Con. 3. IX.32.49
320

अंक 9
संख्या 32

सोमवार
12 सितम्बर
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का मसौदा—*(जारी)*
[अनुच्छेद 24 और भाग 14-क (भाषा) पर विचार] ..... [1973–2112]

भारतीय संविधान सभा

सोमवार, 12 सितम्बर, सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली, में प्रातः 9 बजे अध्यक्ष महोदय माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का मसौदा—*जारी*

अनुच्छेद 24—*(जारी)*

***अध्यक्षः** अब हम शेष संशोधनों को लेंगे।

***श्री एच. सिद्धावीरप्पा** (मैसूर राज्य): श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (4) के अन्त में यह व्याख्या जोड़ दी जाये:—

'Explanation.—The provisions of this clause shall not refer to the system of land tenure called Ryotwari anywhere in the Union including the Indian States.' "

[*व्याख्या.*—इस खंड के उपबन्ध देशी राज्यों के सहित संघ में कहीं भी रैयतवारी के नाम की भूमि लगानदारी की प्रणाली को निर्दिष्ट नहीं करेंगे।]

बहुत संक्षेप में मैं उन कारणों की व्याख्या करूंगा, जिन्होंने मुझे यह संशोधन रखने के लिये प्रेरित किया है। मैं इस बात से अपरिचित नहीं हूं कि मद्रास और बिहार में जमींदारी मिटाने के अधिनियम रैयतवारी प्रथा का निर्देशन नहीं करते हैं। संयुक्तप्रान्त के विधान-मण्डल में लम्बित विधेयक भी वास्तव में रैयतवारी प्रथा पर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं डालता है।

श्रीमान, जैसा कि आपको विदित है, रैयतवादी प्रथा के अधीन भूमि का स्वामी स्वयं कृषक ही होता है, चाहे वह स्वयं खेती करे या मजदूरों की सहायता से खेती कराये। राज्य और उसके बीच में अन्य कोई अभिकर्त्ता नहीं है। ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है, जो जमींदारी प्रथा के समान बिना परिश्रम किये आय पाता हो। यदि आप खंड (4) को देखेंगे, तो आपको विदित होगा कि वह संयुक्तप्रान्त के लम्बित विधेयक की ओर ही निर्देश नहीं करता है, वरन् ऐसे किसी भी विधेयक

[श्री एच. सिद्धावीरप्पा]

की ओर निर्देश करता है, जो इस संविधान के प्रारम्भ के पूर्व किसी राज्य के विधान-मंडल में प्रस्थापित किया जायेगा।

कुछ लोगों का, जिनके अपने कुछ प्रिय सिद्धांत हैं, यह विश्वास है कि लगानदारी के प्रकार पर बिना विचार किये सब प्रकार की भूमियों का राष्ट्रीयकरण हो जाना चाहिये। इस सम्बन्ध में मैं इस सभा के दो माननीय सदस्यों द्वारा पेश किये गये संशोधन संख्या 385 और 391 की ओर निर्देश करूंगा। यह देखा गया होगा कि रैयतवारी प्रथा के अधीन थोड़ी-थोड़ी भूमि पर स्वामित्व है और दाय विधि की मिताक्षर प्रणाली के अनुसार भूमियां और भी अधिक छोटी-छोटी टुकड़ियों में बंटती चली जा रही हैं। इन टुकड़ियों के लिये भूमि सुधार की कोई और ही प्रणाली अपेक्षित है। जिन संशोधनों की ओर मैंने अभी निर्देश किया है, अर्थात् संशोधन संख्या 385 और 391, इनकी शैली को आप यदि ग्रहण करेंगे, तो यह भी हो सकता है कि किसी राज्य का अति उत्साही विधानमंडल इन रैयतवारी भूमि के नाम की भूमियों के लिये भी विधान बना दे। इसके लिये चेतावनी देने और ख्याल रखने के लिये मैंने यह संशोधन पेश किया है।

***श्री के.एम. मुन्शी** (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं यह वर्णन कर दूं कि संशोधन संख्या 504 शाब्दिक है और संशोधन संख्या 505 से सम्बन्धित है।

श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (5) में से 'save as provided in the next succeeding clause' शब्द अपमार्जित किये जायें।"

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (5) के उपखंड (1) के स्थान में यह उपखंड रखा जाये:

'(a) The provisions of any existing law other than a law to which the provisions of clause 6 of this article apply, or' "

[(क) उस विधि के अतिरिक्त जिस पर इस अनुच्छेद के खंड (6) के उपबन्ध लागू होते हैं, अन्य किसी वर्तमान विधि के उपबन्ध, अथवा]

यदि सभा इस मूल प्रस्ताव को देखे, जिसे माननीय प्रधान मंत्री ने पेश किया था, तो उसे यह विदित होगा कि खंड (5) में 'आगामी अनुवर्ती खंड में उपबंधित रीति के अतिरिक्त अन्य कोई बात इत्यादि इत्यादि' शब्द थे। 'आगामी अनुवर्ती खंड में उपबन्धित रीति के अतिरिक्त अन्य कोई बात' दोनों उपखंड (क) और उपखंड (ख) पर लागू होते हैं। पर वह उपखंड (ख) पर लागू होने के उद्देश्य से नहीं

है और इस कारण यह आवश्यक नहीं है कि वह उपखंड (क) में रखा जाये। संशोधन संख्या 504 का उद्देश्य यह है कि खंड (5) को पहली पंक्ति में से इन शब्दों को हटाकर इस परित्राण खंड को उपखंड (क) में स्थानान्तरित किया जाये।

यह केवल शाब्दिक परिवर्तन है और मैं नहीं समझता हूं कि इसकी और अधिक व्याख्या करने में मैं सभा का समय लूं।

मैं एक और विषय का वर्णन करूंगा, जो यदि मुझे इस प्रकार से व्यक्त करने की आज्ञा हो तो, मैं यह कहूंगा कि वह एक मुद्रण त्रुटि है। वह यह है। खंड (1) में 'प्रतिकर निश्चित किया जायेगा' शब्दों के पश्चात् 'और दिया जायेगा' शब्द छूट गये हैं। मैं आशा करता हूं कि तृतीय पाठ में अथवा किसी उपयुक्त समय में 'और दिया जायेगा' शब्द स्वीकार कर लिये जायेंगे।

***अध्यक्षः** इस प्रकार के संशोधन हैं।

***श्री के.एम. मुन्शीः** मैं संख्या 506 को पेश नहीं करना चाहता हूं।

***श्री कृष्ण चन्द्र शर्मा** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 360 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (6) के पश्चात् यह खंड जोड़ दिया जाये:

'(7) The Parliament may by law in case the social and economic condition so necessitate, provide for the socialization of any class of property on such terms and conditions as provided in the law.' "

[(7) यदि सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के अनुसार आवश्यक है, तो संसद विधि द्वारा ऐसे निबन्धों और शर्तों पर सम्पत्ति की किसी श्रेणी का सामाजीकरण करने के लिये उपबन्ध करेगी, जैसे उस विधि में उपबन्धित हों।]

मेरे संशोधन से चार बातें पैदा होती हैं। सर्वप्रथम निर्बन्धनों की कोई न्यायता नहीं है। दूसरी बात यह है कि प्रतिकर का कोई जिक्र नहीं हैं। मेरी तीसरी बात उस समय की सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के सम्बन्ध में है। चौथी सामाजीकरण है। अनुच्छेद 24 के प्रस्थापित मसौदे में अथवा उसके खंड (6) में इन चारों में से एक भी बात नहीं आती है।

पहली बात अर्थात् न्याय्यता के सम्बन्ध में मैं निवेदन करता हूं कि मेरे मित्र श्री नज़ीरुद्दीन द्वारा उद्धृत सांविधानिक उपबन्धों की बड़ी सूची के होते हुये भी ये उपबन्ध ऐसे समय में विधि पुस्तकों में आये, जब कि संपत्ति का अर्थ आज के अर्थ से भिन्न था। अनेक अन्य बातों के अर्थ के समान सम्पत्ति का पुराना

[श्री कृष्ण चन्द्र शर्मा]

अर्थ किसी ऐसी वस्तु से था, जो अपनी सत्ता रखती हो, जो स्थायी हो, परन्तु वर्तमान अर्थ किसी ऐसी वस्तु से है, जो अस्थायी हो। प्राचीन स्मृति शास्त्र ने संसार को जो कुछ दिया, वह एक गतिहीन न्याय विज्ञान था और आधुनिक संसार ने गतिमान न्याय विज्ञान दिया। जैसा माननीय प्रधान मन्त्री ने कहा था, सम्पत्ति का आज कल अर्थ आकलन, प्रामीसरी नोट और प्रतिभूतियों से है, चांदी और सोने से उतना नहीं है; स्त्री और बच्चों से उसका अर्थ नहीं है।

सम्पत्ति का आधुनिक अर्थ प्रक्रियात्मक है: उसके द्वारा किये गये कार्य से है, उसकी गतिविधि से है। आप सम्पत्ति को अपने घर में जमा करके नहीं रख सकते हैं अथवा बिना इस बात के विचारे कि उससे कोई प्रयोजन सिद्ध हो रहा है या नहीं, कोई प्रकार्य या कार्य हो रहा है या नहीं, आप उसको हमेशा अपने कब्जे में नहीं रख सकते हैं। सम्पत्ति का पुराना अर्थ आज कल नहीं माना जा सकता है। अत: दो बातें पैदा होती हैं। समाज की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में संपत्ति का क्या प्रकार्य, कार्य अथवा स्थान है? दूसरी बात यह है कि जो व्यक्ति संपत्ति पर कब्जा रखता है, वह उस संपत्ति से क्या करता है? यदि वह सम्पत्ति किसी प्रकार्य या कार्य करने में सहायक नहीं होती है और समाज की परिवर्तनशील व्यवस्था तथा परिवर्तनों में कोई स्थान नहीं रखती है, तो वह सम्पत्ति कुछ नहीं है। वह निरर्थक है ओर उस पर सम्पत्ति के रूप में कोई दावा नहीं कर सकता है। अत: जब कि यह कहा जाता है कि इस समय अन्धकार है, प्रकाश नहीं है और हर एक बात की आलोचना की जाती है, तो मैं सम्मानपूर्वक यह निवेदन करूंगा कि रात्रि में भी, जब कि प्रकृति में अन्धकार छाया रहता है, प्रकाश तब भी रहता है, पर वह प्रकाश आपको दिखाई नहीं देता है, क्योंकि आप अपने चहुं ओर के वातावरण से आंखें बन्द किये हुए होते हैं।

अत: मेरा आदरपूर्वक यह निवेदन है कि श्री नज़ीरुद्दीन के इस विचार में, कि प्रतिकर और न्याय्यता को लगभग सब स्मृति शास्त्रों में स्थान दिया गया है, कोई बल नहीं है, क्योंकि सम्पत्ति का अर्थ बदल गया है, परिस्थिति बदल गई है, हालत बदल गई और समाज गतिहीन दशा से—केवल स्थान और सत्ता की स्थिति, जो पहले थी, उससे बदल कर गतिमान हो गया है—और पुराने अर्थ वर्तमान परिस्थितियों में ठीक नहीं हैं; यहां तक कि अमरीका के बहुत से संपत्ति के विषय में जागरूक व्यक्तियों ने, जो 1936 तक कुछ पुरानी विचारधाराओं, धारणाओं और विधि के उदाहरणों को माने हुए थे, 1936 से उसमें परिवर्तन कर दिया है। उदाहरणार्थ, न्यूनतम मजूरी विधेयक जैसे विधेयक, कारखानों में काम करने के घंटों से सम्बन्ध रखने वाली बातें, कल्याणकारी अधिनियम और अन्य अनेक बातें, जिनको कभी अमान्य तथा अमरीका के सांविधानिक विधि के विरुद्ध समझा जाता था, उनको 1936 के बाद से मान्य समझा गया है। और भी बहुत सी बातें इसी प्रकार से मान्य समझी जाने लगेंगी, क्योंकि जो

न्यायाधीश उनका निर्वचन करते थे बदल गये हैं और समय परिवर्तन के साथ-साथ संपूर्ण विचारधारा ही बदल गई है।

अभी मैं जर्मनी के 1919 के संविधान के उपबन्ध को प्रस्तुत करूंगा। उसमें एक अनुच्छेद 155 है। उसमें कहा गया है:

"राज्य द्वारा भूमि का वितरण तथा प्रयोग इस प्रकार किया जायेगा कि उसका दुरुपयोग न हो सके और प्रत्येक जर्मन तथा समस्त जर्मन कुटुम्बों के लिये स्वच्छ निवास स्थान का सुनिश्चियन हो सके; विशेषकर उनके लिये, जिनके बहुत से बच्चे हैं, उनकी आवश्यकताओं के अनुसार रहने के लिये कम खर्च का गृह हो। जिन लोगों ने युद्ध में भाग लिया है, उनके विषय में गृह संबंधी विधियों के निर्माण करने में विशेष विचार किया जायेगा।

गृह निर्माण की आवश्यकता की पूर्ति के लिये, अथवा भू-परिमाप के प्रयोजन के लिये। भूमि को कृषि योग्य बनाने के लिये, कृषि और पशुपालन के सुधार के लिये जब अपेक्षित होगा, तब भू-सम्पत्ति का हरण किया जा सकेगा। धार्मिक न्यास समाप्त कर दिये जायेंगे।

सम्प्रदाय के प्रति भू-स्वामी का यह कर्तव्य है कि उसकी भूमि में खेती हो और उसका पूर्ण उपयोग हो, भूमि पर परिश्रम न करके अथवा धन न लगा कर जो भू-संपति के मूल्य में वृद्धि होगी, उसका सम्प्रदाय के लिये प्रयोग किया जायेगा।"

प्रोधोन ने अठारहवीं शताब्दि के उत्तरार्द्ध में संपत्ति के इस अर्थ का प्रतिपादन किया था कि उन पदार्थों को प्राप्त करने का प्रत्येक नागरिक को अधिकार—मूल अधिकार है, जो जीवित रहने के लिये उसकी आवश्यकताओं के उत्पादन के लिये आवश्यक हैं। मैं अमरीका के संविधान पर एक पुस्तक से उद्धृत करता हूं, आप जानते हैं, यह संविधान संपत्ति के विषय को न्याय्य बनाता है और उसमें यह नहीं कहा गया है कि विधि संबंधी न्यायालय का इस विषय में अन्तिम आदेश होगा, वरन् यह कि प्रतिकर का सम्पूर्ण विषय न्यायालय के क्षेत्राधिकार से पृथक् किया जा सकता है। उसमें यह कहा गया है "जब गैर सरकारी सम्पत्ति लोक अथवा अर्धलोक प्रयोजन के लिये ली जाती है, संविधान के अनुसार यह आवश्यक है कि उसके स्वामी को 'उचित प्रतिकर' दिया जाये। पर इस प्रतिकर को किस प्रकार निश्चित किया जाता है? प्रथा यह है कि सरकारी पदाधिकारी सर्वप्रथम स्वयं मूल्यांकन करते हैं और जो वे उचित समझते हैं, वह स्वामी को देने के लिये कहते हैं। अधिकतर स्वामी उस मूल्य को अस्वीकार करते हैं और अधिक पाने के लिये कहते हैं। और फिर सौदा तय करने की साधारण रीति के अनुसार एक समझौता किया जाता है, अथवा कोई समझौते की रकम तय की जाती है। परन्तु यदि इस

[श्री कृष्ण चन्द्र शर्मा]

प्रकार से स्वामी को उतना नहीं मिलता है, जितना वह उचित प्रतिकर के रूप में समझता है, तो वह न्यायालय में अपील करता है।" "आगे जो कुछ कहा गया है, वह महत्वपूर्ण है। "परन्तु यह एक प्रशासनीय न्यायाधिकरण द्वारा भी विनिश्चित किया जा सकता है, जिसकी तथ्य के प्रश्नों के सम्बन्ध में नियमित न्यायालयों में कोई अपील नहीं हो सकती, बशर्ते कि किसी उचित प्रशासनीय कार्य प्रणाली का अनुसरण किया गया हो।" आप इस बात पर ध्यान देंगे कि यदि किसी उचित प्रशासनीय कार्यप्रणाली का अनुसरण किया गया है, तो तथ्य के प्रश्नों के संबंध की अपील न्यायालय में नहीं हो सकती है।

अतः, श्रीमान, नागरिक के लिये अनिवार्य रूप में श्री नज़ीरुद्दीन द्वारा जिस पवित्र अधिकार की मांग की गई है अर्थात् यह कि प्रतिकर के लिये मुकद्दमा चलाने का अधिकार हो, तो यद्यपि उस बात को विधि पुस्तकों में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है, पर संसार में यह बात अब कहीं भी वर्तमान नहीं है। व्यवहार में किसी के लिये अब यह संभव नहीं है कि वह खड़ा होकर यह कहे "यह मेरी भूमि है, मैं इसे नहीं छोडूंगा। चाहे जो कुछ हो, यह मेरे पास ही रहेगी।" चाहे उसकी आवश्यकता उन बच्चों के लिये चिकित्सालय बनवाने के लिए हो जो क्षय रोग से पीड़ित हैं। आधुनिक संसार में कोई भी व्यक्ति इस प्रकार की प्रवृत्ति नहीं रख सकता है।

प्रतिकर के संबंध में मैं निवेदन करना चाहता हूं कि सम्पत्ति मनोवृति पर निर्भर करती है। आप संपत्ति का तब तक ही उपभोग कर सकते हैं, जब तक कि समाज इस संपत्ति पर आपका अधिकार रहने दे, जब तक कि समाज आपको उसका उपभोग करने दे। संपत्ति पर अधिकार सामाजिक परिस्थितियों द्वारा परिसीमित है। मेरा जो आशय है, उसे मैं एक उदाहरण द्वारा व्यक्त करूंगा। मान लीजिये, आप कोई पद धारण किये हैं। आप अपने कार्यालय नहीं पहुंच सकते हैं, जब तक कि राज्य आपके लिये परिवर्तन का प्रबन्ध न करे। और आप अपने काम पर भी तब तक नहीं पहुंच सकते हैं, जब तक कि सामाजिक परिस्थितियां आपकी सहायक न हों और परिवहन के सेवक आपके लिये प्ररिश्रम न करें। यदि सामाजिक परिस्थितियां आपके अनुकूल न हों, तो आप अपनी संपत्ति से कुछ भी पैदा नहीं कर सकते हैं। यदि आपके पड़ोसी न चाहें, तो आप इस संपत्ति पर अधिकार भी नहीं रख सकते हैं और यदि समाज आपको सम्पत्ति का उपभोग नहीं करने देता है तो आप उसका उपयोग नहीं कर सकते हैं। अतः संपत्ति की मनोवृति आपके चारों ओर के सामाजिक परिवर्तनों से प्रतिबन्धित एक सामाजिक मनोवृति है। अतः जब कोई सम्पत्ति किसी सार्वजनिक प्रयोजन के लिये अपेक्षित है, तो आप उस संपत्ति के प्रतिकर के लिये अपने निबन्धन नहीं रख सकते हैं। प्रतिकर से आशय समस्त जनता की इच्छा है। यदि समाज यह नहीं चाहता है कि आप संपत्ति पर अधिकार रखें, तो आप अधिकार नहीं रख सकते हैं। आप इसको अनाचार नहीं कह सकते

हैं क्योंकि संपत्ति स्वयं अपने स्वरूप में एक सामाजिक मनोवृति है और इसी कारण आदिकाल से ऐसी बात चली आ रही है कि आपसे महान् कोई भी मनुष्य आप की संपत्ति पर अधिकार कर सकता है। मध्ययुग में वह व्यक्ति बादशाह होता था और आधुनिक युग में यह महानता जनता की संपूर्ण प्रभुत्व संपन्नता में निहित है। अत: संपत्ति नाम की ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिस पर आप दावा कर सकें और प्रतिकर के लिये अपने निबन्धन रख सकें। उचित प्रतिकर इस बात पर निर्भर करता है कि उस संपत्ति का क्या प्रयोग होता है और उससे क्या प्रकार्य किया जा सकता है।

***अध्यक्ष:** क्या मैं माननीय सदस्य को यह याद दिला सकता हूं कि इस बात पर अन्य कई वक्ताओं ने जोर दिया है?

***श्री कृष्ण चन्द्र शर्मा:** श्रीमान, उचित प्रतिकर संबंधी विषय को मैंने समाप्त कर दिया है। तीसरी बात, जिसका मैं जिक्र करना चाहता हूं, वह सामाजिक और आर्थिक दशा है। श्रीमान, यह एक नया पद है, जिसका मैंने प्रयोग किया है। किसी में भी खड़े होकर यह कहने की सामर्थ्य नहीं है कि मैं यह करना चाहता हूं और यह नहीं, क्योंकि सामाजिक बल इतना अधिक है कि समाज जो चाहता है, वह उससे करा लेता है, चाहे उसकी इच्छा न हो। वह परिस्थिति उत्पन्न हो गई है कि व्यक्ति जो कुछ करना चाहता है, वह नहीं कर सकता है। आज कल मनुष्य से वह काम करा लिया जाता है, जो स्वयं उसकी इच्छा के विरुद्ध हो और उसे ऐसे स्थान को ले जाया जाता है, जहां जाने की उसकी इच्छा नहीं है। समय बदल रहा है। शक्तियां वैयक्तिक स्वेच्छा पर प्रभाव डाल रही हैं। अत: ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हो गई हैं कि कोई व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार काम नहीं करा सकता अथवा जैसा चाहता है, वैसा नहीं कर सकता है अथवा जो कुछ नहीं करना चाहता है उसके करने से मना नहीं कर सकता है। उन्नति के इस सामूहिक आन्दोलन के मार्ग में समाज के वर्ग तक नहीं टिक पाते हैं। ऐसा होने के कारण कोई भी व्यक्ति उस संपत्ति के विषय में अपने निबन्धन नहीं रख सकता है, जिसको अवाप्त किया जाता है अथवा जो प्रयोग उसका किया जाता है, उसके बारे में भी कोई शर्त नहीं रख सकता है। जन शक्ति और सामाजिक शक्ति का यह सामूहिक प्रभाव है, जो इस मार्ग में की समस्त कठिनाइयों को दूर करेगा।

अत: मैं समस्त देश की सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों पर जोर देना चाहता हूं। समाज का एक छोटा-सा भाग, चाहे वह शासक हो या विधान मंडल, जो कुछ सामाजिक और आर्थिक बलों की मांग है, उसके विरुद्ध अपने निबन्धन नहीं रख सकता है। अत: मैं आपसे निवेदन करता हूं कि आप अपनी आंखें बन्द करके यह न कहें कि हमको अंधकार दिखाई देता है। अंधकार तो आपको इसलिये दिखाई देता है कि आपने अपनी आंखें बन्द कर ली हैं। ये सामाजिक शक्तियां कहीं न

[श्री कृष्ण चन्द्र शर्मा]

कहीं अपना काम कर रही हैं। परिस्थिति की वास्तविकता को पहचानिये। कोई भी मनुष्य यह कल्पना नहीं कर सकता है कि कुछ काल पश्चात् ही वह कहां होगा। आप यह भी कल्पना नहीं कर सकते हैं कि आप जहां हैं, वहां भी रहेंगे या नहीं।

अत: हमें समय के अनुसार चलना चाहिये। यदि हम समय के अनुसार नहीं चलेंगे, तो उसका अर्थ होगा निष्क्रियता और मृत्यु और हम विपत्ति को आमंत्रित करेंगे। जो लोग समय के साथ नहीं चलते है वे ही यह कहते हैं कि उनके चारों ओर अंधकार है, उनके चारों ओर कदाचार है और पवित्रता कहीं भी नहीं है। अनादि काल से परिवर्तन होते चले आये हैं, उलटफेर होते रहे हैं, क्रान्तियां हुई हैं और जो लोग परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप अपने आपको नहीं बना सके उनका नाश हो गया। परिवर्तन होगा और अवश्य होगा। और जो लोग संपत्ति की पवित्रता की पुकार कर रहे हैं तथा ऐसी ही अन्य बातों की पुकार कर रहे हैं, उनका नाश हो जायेगा।

***अध्यक्ष:** आप अन्य वक्ताओं की बातों को नहीं, वरन् अपनी बातों को भी दुबारा कह रहे हैं।

***श्री कृष्ण चन्द्र शर्मा:** श्रीमान, मेरी धारणा यह है कि सामाजिक और आर्थिक दशाओं में परिवर्तन होता है और हमें समय के अनुसार चलना चाहिये। एक बात और कहनी है, श्रीमान।

***अध्यक्ष:** आपको अभी कुछ और बातें भी कहनी हैं।

***श्री कृष्ण चन्द्र शर्मा:** समाजीकरण को केवल स्पर्श करना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** इस प्रश्न पर कई भाषण हो चुके हैं और कई संशोधन आ चुके हैं।

***श्री कृष्ण चन्द्र शर्मा:** पर समाजीकरण को किसी सदस्य ने छुआ तक नहीं है।

***अध्यक्ष:** तो अन्य विषयों की अपेक्षा, जिनको पहले लिया जा चुका था, आप इसी विषय पर भाषण देते।

***श्री कृष्ण चन्द्र शर्मा:** मुझे खेद है, श्रीमान, पर मैं बहुत ही संक्षेप में बोलूंगा। मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि हमारे लोकतंत्रात्मक गणराज्य होने के कारण जिसमें कि सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता जनता में निहित कर दी गई है, जनता को यह अधिकार होगा कि वह सम्पत्ति का जो चाहे सो करे। आरम्भ में संपत्ति एक सामूहिक वस्तु थी। बाद में जैसे जैसे विकास हुआ और खेती होने लगी, भूमि पर वैयक्तिक अधिकार होने लगा और वह उस व्यक्ति विशेष की संपत्ति हुई, जिसने झाड़ियों को साफ किया और उस भूमि को कृषियोग्य बनाया; इसी कारण वह

उसका स्वामी हो गया। अब चूंकि खेती और उत्पादन के तरीके बदल गये हैं समाज के हित में, राज्य के हित में, यह अच्छा है कि संपत्ति फिर सामूहिक वस्तु हो जाये। सामाजिक उन्नति के हित में, वातावरण के अनुसार यह ठीक है कि संपत्ति—यदि परिस्थितियां यही चाहती हैं, तो वैयक्तिक वस्तु के बजाय—वैयक्तिक अधिकार में होने के बजाय—समाज के अधिकार की वस्तु हो जाये। श्रीमान, मैं अपना प्रस्ताव पेश करता हूं।

***अध्यक्ष:** कार्यावली में जो संशोधन दिये हुए थे, वे सब समाप्त हो चुके हैं। प्रस्थापना और संशोधनों पर अब वाद-विवाद हो सकता है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): श्रीमान, क्या मैं यह कह सकता हूं कि संशोधन संख्या 504, जिसे श्री मुंशी ने पेश किया है, वह मेरे संशोधन संख्या 425 में आ जाता है?

***अध्यक्ष:** आ सकता है, उनसे पेश करने के लिये कहने की मैंने गलती की। अब प्रस्थापना और संशोधनों पर वाद-विवाद हो सकता है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** संशोधन संख्या 504 ठीक वैसा ही है, जैसा कि संशोधन संख्या 425।

***श्री कामेश्वर सिंह (दरभंगा के)** (बिहार : जनरल): श्रीमान, संविधान के इस बहुत ही महत्वपूर्ण मद पर मुझे अपने विचार प्रकट करने का अवसर देने के लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूं। इस अनुच्छेद में वह सिद्धान्त निहित है और यह अनुच्छेद उस कार्यप्रणाली को निर्धारित करता है, जिसके अनुसार जब कि गैर सरकारी संपत्ति को लोक प्रयोजनों के लिये अवाप्त करना आवश्यक समझा जायेगा, तो राज्य द्वारा उसको अवाप्त किया जायेगा।

मेरे हृदय को बड़ा धक्का लगा, जब मैंने अपने प्रधान मंत्री जैसे महान व्यक्ति तथा माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर, श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर, श्री के.एम. मुंशी और संयुक्तप्रान्त के मुख्य मंत्री जैसे विधि के शास्त्रियों और संविधान के विशेषज्ञों द्वारा प्रस्थापित संशोधन को पढ़ा।

मैं यह समझ पाता हूं कि इतने महान व्यक्तियों ने इस प्रस्थापना में क्यों साथ दिया कि यदि इस संविधान के प्रारम्भ के पश्चात् यदि कोई जाप्ती का कानून पारित किया जाता है, तो वह न्याय्य है; जब कि यदि ऐसी कोई विधि इस संविधान के प्रारम्भ के पूर्व लम्बित है या पारित हो चुकी है, तो वह न्याय्य नहीं है। सभा से और प्रस्तावक महोदय से मैं यह पूछता हूं कि वह स्वयं विचार करें कि क्या इस प्रकार का अन्तर उचित और ठीक है।

न्यायालयों से इन दो प्रकारों के विधानों का अपवर्जन करके क्या इस संशोधन के लेखक महोदय ने यह नहीं मान लिया है कि इस विधान के उपबन्ध इतने

[श्री कामेश्वर सिंह]

अन्यायपूर्ण और अनुचित हैं कि वे न्यायालय की जांच पड़ताल के सामने नहीं टिक सकते हैं? वास्तव में संशोधन के खंड (4) और (6) इस अनुच्छेद में दिये हुए सामान्य सिद्धान्त के अर्थ और भाव का विरोध करते हैं और मूलाधिकार समिति की उन सिफारिशों को अस्वीकार करते हैं, जो इस सभा ने स्वीकार कर ली हैं और जो संविधान के मसौदे में समाविष्ट कर दी गई हैं। ये खंड प्रशासी प्राधिकारी द्वारा स्वीकृत किसी जाप्ती के कानून तक को बिना किसी विरोध के चलने देना चाहते हैं और जनता के एक वर्ग को उस रक्षण से वंचित करते हैं, जो संविधान द्वारा अन्य व्यक्तियों को प्राप्त है। क्या इतनी महान सभा को यह शोभा देता है कि इस प्रकार के असमान भेदभावों का पुर:स्थापन कर वह उन सिद्धान्तों को तिलांजलि दे और उस भवन को कुरूप बना दे जिसके निर्माण करने का प्रयास न्याय, स्वातन्त्र्य, समानता और भ्रातृत्व रूपी चार स्तम्भों पर किया जा रहा है? हम जानते हैं कि संविधान कुछ मूलाधिकारों की समस्त नागरिकों के लिये प्रत्याभूति करता है और उन अधिकारों के रक्षण के लिये एक न्यायालय का सृजन करता है। तो फिर क्या यह इस देश के उस सर्वोच्च न्यायिक न्यायाधिकरण में भी विश्वास का अभाव प्रकट नहीं करता है, जिसकी स्थापना विधि पालन के लिये की गई है? मुझे विवश होकर यह कहना पड़ता है कि मुझे आशा न थी कि इतने महान व्यक्ति, जिनका इस संशोधन से सम्बन्ध है, वे ऐसी प्रवृत्ति ग्रहण करेंगे।

अभी उस दिन ही तो भारत के मुख्य राज्यपाल ने देश की लोकतंत्रात्मक व्यवस्था में न्यायपालिका के कर्तव्यों के संबंध में एक महत्वपूर्ण बात कही थी। उन्होंने कहा था:—

> "विधि के निष्पक्ष निर्वचन द्वारा और मनुष्य में तथा राज्य और प्रजा में स्वतंत्र रूप से ठीक न्याय करके ही न्यायपालिका लोकतंत्र के झंडे को ऊंचा रखती है और इस देश के निर्धन से निर्धन व्यक्ति में यह विश्वास उत्पन्न कराकर ही लोकतंत्र का झंडा ऊंचा रह सकता है कि उसके प्रति किये गये अन्याय का निराकरण किया जायेगा और उसकी न्याययुक्त शिकायतों को दूर किया जायेगा।"

सभा ने यह ध्यान दिया होगा कि इस संशोधन के खंड (4) और (6) सताये हुए पक्ष को न्यायालय में जाने के अधिकार से वंचित करते हैं और इस प्रकार कार्यपालिका के प्राधिकारी को एक स्वेच्छाचारी की स्थिति में रखते हैं।

मैं यह चाहूंगा कि सभा इस बात को समझे कि जिस संविधान को हम आत्मार्पित कर रहे हैं, उसमें निहित सिद्धान्त वैयक्तिक स्वातंत्र्य के अधिकार की प्रत्याभूति करते हैं और वह उन साधारण अधिकारों और तर्क पर आश्रित हैं, जो कि समस्त लोकतंत्र का मूल सिद्धान्त है। तो फिर क्या इस प्रकार का भेदभाव, जिसको इस

संशोधन द्वारा पुर:स्थापित किया जा रहा है, साधारण अधिकारों और तर्क के अनुरूप है? क्या यह उन परिस्थितियों द्वारा पैदा हुए डाह और ईर्ष्या से युक्त नहीं है, जो परिस्थिति की अब बदल गई है?

मैं यह जानता हूं कि कांग्रेस पक्ष, जिसका सभा में भारी बहुमत है, जमींदारी प्रथा को मिटाने के लिये वचनवद्ध है, परन्तु समान रूप से वह उचित प्रतिकर देकर ही ऐसा करने के लिये वचनबद्ध है। अपने वचन के प्रथम भाग का पालन करने में, न्यायपालिका में प्रतिकर के निश्चयन के विषय को जाने से रोककर— राज्य विधान मंडल द्वारा शक्ति का दुरुपयोग कर क्या वह अपने वचन के दूसरे भाग के पालन करने से विमुख नहीं हो रही है? जैसा कि पंडित जवाहरलाल नेहरू ने स्वयं कहा था "या तो संसद स्वयं प्रतिकर नियत करती है या प्रतिकर सम्बन्धी सिद्धान्त नियत करती है और सिवाय एक बात के उसका विरोध नहीं करना चाहिए। जहां यह समझा जाये कि विधि का बहुत अधिक दुरुपयोग किया गया है और जहां कि वास्तव में संविधान का उल्लंघन किया गया है, तो संभवत: न्यायपालिका का वहां यह देखने के लिये पदार्पण हो जाता है कि संविधान का उल्लंघन हुआ है या नहीं।" परन्तु जहां तक लम्बित विधान और आधुनिक अधिनियमों का संबंध है, इस संकीर्ण प्रयोजन के लिये भी न्यायपालिका का द्वार बन्द कर दिया गया है। मैं विनम्र निवेदन करता हूं कि यह भेदभाव बहुत ही अनुचित है।

और इसके पश्चात् खंड (4) और (6) (यद्यपि इतने अधिक शब्दों के द्वारा नहीं वरन् वास्तव में) जमींदारी सम्पत्ति और अन्य प्रकार की संपत्तियों में मद्रास, बिहार और संयुक्त प्रान्त तथा अन्य प्रान्तों में विभेद करते हैं और यदि प्रान्तों को ऐसी इच्छा है, तो संविधान के प्रारम्भ के पूर्व उनको जाप्ती के विधान अधिनियमित करने के लिये गुंजाइश की व्यवस्था करते हैं। वास्तव में संशोधन का पूर्वगामी प्रभाव है और वह भारत शासन अधिनियम की धारा 299 के न्याय अधिकारों तक का हरण करता है। यह संशोधन एक बहुत ही कलुषित सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। यह कलुषित है, क्योंकि यह वास्तविक रूप में एक प्रकार की गैर-सरकारी संपत्ति का दूसरे प्रकार की गैर-सरकारी संपत्ति में विभेद करता है। यह कलुषित है, क्योंकि यह भारतीय संघ के नागरिकों के एक वर्ग के साथ दूसरे वर्ग से भिन्न प्रकार का बर्ताव करता है। यह कलुषित है, क्योंकि गैर-सरकारी संपत्ति का परोक्ष रूप से हरण करने की मंजूरी देता है। इस संशोधन के समर्थकों से मैं विनम्र निवेदन करूंगा कि वे संविधान में इस कलुषित सिद्धान्त का पुर:स्थापन न करें। यदि वे ऐसा करेंगे तो आज हम कुछ लोगों का जो दुर्भाग्य होगा वह समस्त देश का दुर्भाग्य हो सकता है। कांग्रेस संगठन ने महान् तथा उच्च सिद्धांतों पर अपना उच्च निर्माण किया है। देश का भाग्य उसके हाथों में है और उसे महान कर्त्तव्य करने हैं और बड़ा भारी उत्तरदायित्व अपने कंधों पर वहन करना है। इस संशोधन

[श्री कामेश्वर सिंह]

के प्रस्तावक महोदय से मैं आग्रह करूंगा कि सभा से वे कोई ऐसा कार्य न करायें, जो उस महान संगठन द्वारा अंगीकृत सिद्धान्तों का हनन करे या अपने सिद्धान्तों के पालनार्थ जो प्रतिज्ञा उसने की है, उसके विरुद्ध वह कार्य हो।

***अध्यक्ष:** मैं देखता हूं कि चारों तरफ कुछ ऐसी फुसफुसाहट हो रही है, जिससे मैं समझता हूं कि जितनी बाधा मुझे यहां हो रही है, उतनी ही माननीय सदस्यों को हो रही होगी और मैं सदस्यों से निवेदन करूंगा कि वे वाद विवाद का कार्य इस प्रकार से चलने दें, जिससे कि उसमें सब को रुचि हो।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, माननीय प्रधान मंत्री ने जिस रूप में अनुच्छेद 24 पेश किया है, उस रूप में उसका समर्थन करते हुए मैं कुछ शब्द कहने के लिये सभा से क्षमा मांगता हूं, केवल इस कारण कि इस अनुच्छेद में आई हुई कुछ बातों के संबंध में मैं माननीय प्रधान मंत्री से सदैव एकमत नहीं रहा हूं और अब मैंने उनके दृष्टिकोण को स्पष्ट हृदय से स्वीकार कर लिया है।

(इस समय अध्यक्ष महोदय ने आसन रिक्त किया और उसके पश्चात् उपाध्यक्ष महोदय श्री वी.टी. कृष्णमाचारी ने वह आसन ग्रहण किया।)

धारा 199 के पद 'payment' (देना) ने, जिसको संविधान के मसौदे के अनुच्छेद 24 में रखा गया है, कुछ कठिनाई पैदा की है कि वह कुछ क्षेत्रों में व्यक्त किये गये इस विचार का समर्थन करता है कि 'देना' शब्द में राज्य में प्रचलित सिक्के के रूप में देने का अर्थ निहित है न कि हुंडी के रूप में और संभवत: किस्त के रूप में भी नहीं, वरन् संपत्ति के अनिवार्य अर्जन पर तुरंत मुआविजा देने के रूप में। खंड (2) जिस रूप में सभा के समक्ष प्रस्तुत किया गया है उसमें 'देने' का कोई उल्लेख नहीं है, क्योंकि 'देने' पद में निर्वचन संबंधी कुछ कठिनाई पैदा हो गई हैं। अब जो अनुच्छेद का मसौदा बनाया गया है उसमें केवल यह उपबन्धित किया गया है कि जिस संपत्ति पर अधिकार किया जाता है, या जिस संपत्ति को अर्जित किया जाता है, उसके प्रतिकर के लिये विधि में व्यवस्था होनी चाहिये। इस बात को सभा द्वारा पारित की गई समवर्ती सूची की प्रविष्टि 35 के साथ लेने से, जो संबद्ध विधानमंडल को मुआविजा देने की रीति उपबन्धित करने का अधिकार देती है, इस विषय के सब प्रकार के सन्देहों का निराकरण हो जाता है कि प्रतिकर उसी समय राज्य के प्रचलित सिक्के में दिया जाये या नहीं।

खंड (2) का दूसरा भाग जिस पर बहुत वाद-विवाद हुआ है वह भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 299 में और अनुच्छेद 24 मूल मसौदे में, जो सारवत्

रूप में धारा 299 की प्रतिलिपि मात्र है, 'प्रतिकर' पद के अर्थ पर हुआ है। एक ओर इस बात पर जोर दिया गया है कि 'प्रतिकर' शब्द में ही यह बात आ जाती है कि वह अर्जन करने की तारीख में जो संपत्ति का मूल्य है, उसके बराबर होना चाहिये, अर्थात् बाजार भाव के बराबर। दूसरी ओर से इस बात पर जोर दिया गया है कि जिस रूप में यह खंड है, उसे उसी रूप में मानते हुए जो उस सिद्धान्त के उल्लेख करने वाली विधि की ओर निर्देश करता है, जिसके अनुसार तथा जिस रीति से प्रतिकर निश्चित किया जायेगा, वह उस सिद्धान्त बनाने के विषय में, जिसके अनुसार तथा जिस रीति से प्रतिकर निश्चित किया जायेगा, विधान मंडल को स्वतंत्रता देता है। प्रसंग में इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि धारा 299 में और। अनुच्छेद 24 में जिस भाषा का प्रयोग किया गया है, वह उस भाषा के समान नहीं है जिसका प्रयोग अन्य संविधानों में उचित प्रतिकर देकर संपत्ति के अनिवार्य अर्जन संबंधी उपबन्धों में प्रयोग किया गया है। उचित शब्द को जिसे अमरीका और आस्ट्रेलिया के संविधानों में स्थान दिया गया है, धारा 299 और अनुच्छेद 24 में से निकाल दिया गया है। आस्ट्रेलिया और अमरीका के संविधानों में उस सिद्धान्त और रीति का भी कोई निर्देश नहीं है, जिसके द्वारा प्रतिकर निश्चित किया जायेगा। स्वयं अपने रूप में ही सब प्रकार के अर्जन के लिये एक सा नहीं हो सकता है। सिद्धान्त बनाते हुए विधान मंडल को अनिवार्यतः संपत्ति के प्रकार पर, इतिहास और उपभोग पर, विधान के एक वृहद् जन समुदाय पर पड़ने वाले प्रभाव पर तथा अन्य ऐसी ही बातों पर ध्यान देना होगा। आगे एक और भी बात है कि अनुसूची 7 में समवर्त्ती सूची की प्रविष्टि 35 को सभा द्वारा पारित कर विधानमंडल को प्रतिकर के सिद्धान्तों और रीति के बनाने की पूर्ण शक्ति दे दी गई है।

संविधानिक विधि का यह स्वीकृत सिद्धान्त है कि संविधान के उपबन्धों के अधीन किसी विशेष विषय पर विधि पारित करने की शक्ति जब विधान मंडल को दे दी जाती है—चाहे वह विधान मंडल केन्द्रीय संसद हो अथवा प्रान्तीय विधान मंडल हो विधान मंडल के अधिनियम पर निर्णय करना न्यायालय का काम नहीं होता है। न्यायालय अपने आप को विधान मंडल से बड़ा नहीं समझ सकता है और पुनर्विचार अथवा पुनर्विलोकन न्यायालय के रूप में वह विधानमंडल के अधिनियम पर निर्णय नहीं दे सकती है। विधानमंडल चाहे बुद्धियुक्त कार्य करे अथवा बुद्धिहीन कार्य करे। विधान मंडल द्वारा निर्मित सिद्धान्त किसी न्यायालय को उपयुक्त प्रतीत हो या न हो। सामान्यतया न्यायालय कार्य विधान मंडल द्वारा अपनी शक्तियों के अन्तर्गत अधिनियमित की गई विधि का प्रशासन करता है। हां, यदि विधान में किसी कृत्रिम उपाय का सहारा लिया गया है, यदि वह विधायी शक्ति की सीमाओं को अतिक्रमण करने की कोई युक्ति है अथवा निजी विधि की भाषा में यदि वह शक्ति का कपटमय प्रयोग है, तो न्यायालय उस विधान को अमान्य तथा अधिकार

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

से बाहर का विधान घोषित कर सकता है। न्यायालय को इस आधार पर आगे बढ़ना होगा कि वह विधान अधिकार के अन्तर्गत है। किसी संविधानिक विधि को नगरपालिका के अधिनियम के समान नहीं माना जा सकता है और विधानमंडल इस अत्यधिक शक्ति के अन्तर्गत, जो उसे सौंपी गई है, किसी भी विधान का अधिनियमन कर सकती है। जैसा कि मैं बता चुका हूं, इस सभा द्वारा पारित कर दिये गये मद 35 के समान मद भारत शासन अधिनियम, 1935 में नहीं है, जो विधानमंडल को प्रतिकर के सिद्धान्त को बनाने की शक्ति प्रदान करता हो और अनुच्छेद 24 की किसी भी रचना में यह एक महत्वपूर्ण बात है, जिस पर विचार करना होगा। मैं यह कहूंगा कि इस अनुच्छेद के सभा द्वारा विचारार्थ प्रस्तुत किये जाने के पूर्व ही मैंने अपने विचार औपचारिक रूप में माननीय प्रधान मंत्री के समक्ष प्रकट कर दिये थे। अनुच्छेद 24 के मुख्य भाग पर जो विचार मैंने प्रकट किये थे, उनमें इस बात पर जोर दिया गया था कि खंड (2) और (3), जो प्रकटतया संयुक्तप्रान्त सभा में इस समय लम्बित विधान के सम्बन्ध में रखे गये थे, वे अनावश्यक हैं। पर यह सोचा गया कि इस तथ्य पर ध्यान देते हुए कि बहुत अच्छे प्रकार से सोची समझी गई सम्मति स्वयं अपने रूप में कोई ऐसी प्रत्याभूत नहीं हो सकती है कि देश की सर्वोच्च न्यायालय उससे भिन्न अर्थ न निकाले तथा इस समस्या के गुरुत्व के कारण समस्त सम्बद्ध व्यक्तियों के सर्वोत्तम हित में यह वांछनीय समझा गया कि मुकदमेबाजी को समाप्त किया जाये और इस अनुच्छेद में खंड (2) और (3) के समावेश करने का यही कारण है।

जैसाकि मैं बता चुका हूं, खंड (2) और (3) मुख्यतः संयुक्तप्रान्त के उसके उस विधान के संबंध में रखे गये थे, जो इस समय संयुक्तप्रान्त सभा में लम्बित हैं और वे इस संविधान के पारित होने के बाद तक चलते रहेंगे। ये दो खंड...

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** खंड (4) और (6) होना चाहिये, न कि खंड (2) और (3)।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यरः** इसके लिये मैं आपका आभारी हूं।

ये दो खंड राष्ट्रपति के विचार के लिये विधेयक को रोकने और राष्ट्रपति को अपने निर्णय का प्रयोग करने तथा उस उपक्रम पर अपनी अनुमति देने के लिये उपबन्ध करते हैं। राष्ट्रपति से यह आशा की जाती है कि वह इस बात पर ध्यान दें कि वह विधेयक अनुच्छेद 24 की मुख्य योजना के अनुरूप है और यदि उस विधेयक में उन सिद्धान्तों का पालन नहीं किया गया है, जो विधान द्वारा विचार किये गये विषय के प्रकार के लिये समुचित प्रतिकर के सम्बन्ध में है, तो उससे यह आशा नहीं की जाती है कि उस विधेयक पर वह अपनी अनुमति दे। इस

प्रसंग में तथा इन परिस्थितियों में राष्ट्रपति की अनुमति केवल औपचारिक अनुमति नहीं है। यदि उसे इस बात का समाधान हो जाता है कि उस विधेयक में उस रूप तथा उस सीमा तक का न्याय नहीं है जिसका मैंने उन लोगों के स्वामित्व अधिकार के संबंध में संकेत किया है, जिनको संपत्ति से वंचित किया जायेगा, तो उसका यह स्पष्ट कर्तव्य होगा कि अनुमति न दे। न्यायालय में इस विषय पर मुकदमेबाजी होने के स्थान में तथा जनता के उस एक बड़े भाग को ध्यान में रखते हुए, जिस पर इस विधान का प्रभाव पड़ेगा और भिन्न-भिन्न न्यायालयों में मुकदमा होने से जो विलम्ब, कष्ट, व्यय और दु:ख उन्हें उठाना होगा, राष्ट्रपति की अनुमति के फल के रूप में इस विधान को अन्तिम प्रभाव दिया गया है। संयुक्तप्रान्त के विधेयक से मैं पूर्णतया परिचित नहीं हूं और उस उपक्रम की न्याय्यता पर अथवा अन्यथा कुछ कहने की स्थिति में मैं नहीं हूं। खंड में एक विधेयक की ओर निर्देश किया गया है, क्योंकि यह आशा की जाती है कि सामान्यतया वह विधेयक विधि के रूप में पारित नहीं होगा। वरन् जब तक कि नया संविधान पारित नहीं होता, तब तक वह लम्बित रहेगा, यह हो सकता है कि एक इस प्रकार का समुचित उपबंध संक्रांति कालीन उपबंधों में रखना पड़े कि यदि कोई विधेयक इस संविधान के पारित होने की तारीख तक लम्बित है, तो उसको नये संविधान के प्रवर्तन में आने के बाद भी किया जायेगा तथा जारी रखा जायेगा।

अन्तिम खंड स्पष्टतया मद्रास संपदा उन्मूलन अधिनियम तथा बिहार अधिनियम पर विचार करने के उद्देश्य से है। इस अधिनियम की मान्यता के विरोध में सूचनायें दी जा चुकी हैं। मद्रास सरकार द्वारा व्यक्त किये गये विचारों के अनुसार भी यह अधिनियम वास्तव में कई बातों में अधूरा है और संभवत: दोषपूर्ण है। मद्रास सरकार ने जो स्थिति ग्रहण की है, वह यह है कि इस अधिनियम के उपबन्धों के अधीन उसको यह प्राधिकार है कि वह कई संपदाओं को सूचित करे और बिना किसी प्रतिकर के दिये हुए उन पर अधिकार करे। सरकार की ओर से यह कहा जाता है कि इस अधिनियम के उपबन्धों के अधीन परिमाप और बन्दोबस्त समाप्त होने के पश्चात् तक प्रतिकर देने में वह अपनी इच्छा के अनुसार समय लगायेगी, जिसमें संभवत: कई वर्ष लगेंगे। उन संपदाओं पर अधिकार करने के समय सरकार ने प्रतिकर का कोई अंश तक नहीं दिया है और यह कहा जाता है कि उसको यह परामर्श दिया गया है कि वह जमींदारों द्वारा यह समझौता करने पर भी, कि जो राशि दी जाती है, उसका हिसाब अन्त में जो कुछ प्रतिकर निश्चित किया जाये, उसमें से कर लिया जाये, वह प्रतिकर नहीं दे। अधिनियम में यह उपबन्ध किया गया है कि प्रतिकर देने संबंधी कुछ विषय के नियम बनाये जायें और समाचार पत्रों में यह प्रकाशित हुआ था कि जिस समय मद्रास के इस विधेयक पर अनुमति दी गई थी, तो वह इस आधार पर थी कि यथासंभव शीघ्र नियम बना दिये जायेंगे

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

और वे नियम मुख्य राज्यपाल के समक्ष रखे जायेंगे। मद्रास सरकार के विचार के अनुसार इन नियमों का न बनना तुरन्त ही संपत्ति पर अधिकार करने के मार्ग में आड़े नहीं आ सकता है।

समाचार पत्रों से मुझे विदित होता है कि इस अधिनियम की मान्यता के विरोध में मुकदमा चलाने की सूचना कई जमींदारों ने दी है। यदि इन परिस्थितियों में विधि को अपनी रीति के अनुसार क्रियान्वित होने दिया जाये और यदि इन लोगों को जिन पर प्रभाव पड़ेगा, मुकदमा चलाने दिया जाये, तो सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस बात पर अन्तिम निश्चय होने तक वर्षों लग जायेंगे और फिर न्यायालयों के मुकदमों के निर्णयों के बारे में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। एक न्यायालय, सरकार के पक्ष में निर्णय करे, दूसरा न्यायालय जमींदार के पक्ष में निर्णय करे। अध्यक्ष द्वारा प्रमाणपत्र का उपबन्ध करके खंड (6) भविष्य में इन सब मुकदमेबाजी को समाप्त करने के उद्देश्य से है। मुकदमेबाजी का बहुत से लोगों पर प्रभाव पड़ने का विचार करते हुए, कृषि के भविष्य और अपने प्रान्त में कृषि उन्नति का विचार करते हुए जिस रूप में खंड (6) माननीय प्रधान मंत्री ने पेश किया है, उसका मैं पूर्ण समर्थन करता हूं। कई बार मैंने मद्रास के इस विधेयक के विरुद्ध अपने विचार प्रकट किये हैं और मैं यह भी कह दूं कि मैं भी एक छोटा-मोटा जमींदार हूं, जिस पर मद्रास के इस विधान का भारी प्रभाव पड़ेगा। यदि केवल पारिभाषिक दृष्टिकोण से इस विषय पर विचार किया जाये, तब तो उचित रीति यही होगी कि भारतीय शासन विधि, 1935 की धारा 299 का समुचित रूप में संशोधन किया जाये या मद्रास विधान मंडल द्वारा पारित की गई विधि को प्रणाली के अनुसार चलने दिया जाये, जब तक कि पुनर्विचार का अन्तिम न्यायालय इसका निश्चय न करे। पर मैंने सोचा कि माननीय प्रधान मंत्री ने सरकार को राष्ट्रपति से इस विषय में स्पष्टीकरण करा लेने का जो यह खंड पेश किया है, वह मुकदमेबाजी का अन्त कर देगा। राष्ट्रपति तभी प्रमाणपत्र देगा तथा दे सकेगा, जब कि उपबन्धों को जांच लेने के पश्चात् उसे यह समाधान हो जाये कि वह विधेयक संविधान के उपबन्धों के अनुकूल है और जिन जमींदारों पर प्रभाव पड़ेगा, उनको उचित तथा ठीक प्रतिकर यथा संभव शीघ्रता से दिया जा रहा है और इस विषय के समस्त पहलुओं पर विचार करते हुए, जो उस संपत्ति से संबंध रखते हैं, जिससे उनको वंचित किया जा रहा है, वह प्रमाणपत्र देगा। यदि राष्ट्रपति किसी संशोधन का सुझाव देता है और सरकार तथा संबद्ध विधान मंडल उस संशोधन को स्वीकार करना नहीं चाहती है, तो राष्ट्रपति का यह स्पष्ट कर्तव्य है कि वह प्रमाणपत्र को रोक ले और फिर उस विषय का न्यायालय में निर्णय होगा। मैं नहीं समझता हूं कि उत्तरदायित्व की भावना से परिपूर्ण कोई भी मंत्रिमंडल किसी भी बताये गये दोष को शीघ्रता के साथ इस सरल रीति से दूर करने के स्थान में लम्बी मुकदमेबाजी करके उस विषय का निश्चय कराना चाहेगा। इस पूर्ण विश्वास और आशा के

साथ कि सद्भावनापूर्ण वातावरण होगा और सरकार इस विषय में उचित तथा व्यापक विचारधारा ग्रहण करेगी, मैं प्रधान मंत्री द्वारा प्रस्तुत किये गये खंड का समर्थन करता हूं।

माननीय प्रधान मंत्री ने जिन सामान्य पहलुओं को लिया था, उन पर कुछ शब्द कहूंगा। यद्यपि मेरा पेशा वकालत है पर मैं इस बात का दावा कर सकता हूं कि मैंने कानूनी दृष्टि से कानून का कभी अध्ययन नहीं किया। मेरे विचार के अनुसार यदि विधि अपने विशालतर प्रयोजन को सिद्ध करना चाहता है, तो उसका सामाजिक विकास के यंत्र के रूप में उपयोग करना चाहिये। हमारे पूर्वजों ने संपत्ति को ही अन्तिम लक्ष्य कभी नहीं समझा था। संपत्ति धर्म के लिये है।

(इस समय अध्यक्ष ने शासन ग्रहण किया।)

समाज के प्रति व्यक्ति का क्या धर्म है, क्या कर्तव्य है, यही बात हमारे सामाजिक भवन की आधारशिला थी। धर्म समाज-कल्याण की विधि है और युग के अनुसार उसमें परिवर्तन होता है। पूंजीवाद की जो प्रथा पश्चिम में प्रचलित है, उसका विकास औद्योगिक क्रान्ति से हुआ और वह हमारी सभ्यता के मूलभूत विचारों के प्रतिकूल है। संपत्ति का एकमात्र लक्ष्य यज्ञ है और सामाजिक प्रयोजनों के लिये उपयोग है, यह वह विचार है, जो महात्मा गांधी के जीवन और शिक्षाओं का मूल मंत्र है। इस दृढ़ आशा में कि यह संशोधन इस देश के करोड़ों कृषकों की सामाजिक उन्नति को और अधिक गति प्रदान करेगा, मैं माननीय प्रधान मंत्री द्वारा प्रस्तुत की गई प्रस्थापना का पूर्ण हृदय से समर्थन करता हूं।

***श्री श्यामानंदन सहाय** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, कुछ घबराहट के साथ मैं यहां खड़ा होता हूं, क्योंकि मुझे यह विश्वास नहीं है कि आज मेरे विचारों का यहां किस रूप में स्वागत किया जायेगा।

***पं. बालकृष्ण शर्मा** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): इसकी आप चिंता न करें।

***श्री श्यामानंदन सहाय:** पंडित बालकृष्ण शर्मा के होते हुए भी इस सभा की बुद्धिमानी, चातुरी और दक्षता में मुझे पर्याप्त विश्वास है कि इस समय सभा में जो विषय विचाराधीन है, उस पर मुझे अपने स्वतंत्र तथा स्पष्ट विचार प्रकट करने में बाधा न होगी।

***पं. बालकृष्ण शर्मा:** मैं माननीय सदस्य को केवल प्रोत्साहित कर रहा था।

***श्री श्यामानंदन सहाय:** श्रीमान, अनेक रूप में यह दुर्भाग्यपूर्ण बात है कि यह संशोधन माननीय प्रधान मंत्री द्वारा प्रस्तुत किया गया है, इस रूप में दुर्भाग्यपूर्ण है कि किसी उद्देश्य को प्राप्त करने में तथा किसी ऐसी प्रस्थापना को मान लेने में, जो चाहे उनके विचार के प्रतिकूल ही क्यों न हो, समस्त उपचारों और ऐश्वर्य की झूठी प्रतिष्ठा को तिलांजलि देने का गुण उनमें विद्यमान है और कुछ इस रूप में भी दुर्भाग्यपूर्ण है कि जो प्रस्थापना मैं आपके समक्ष रख रहा हूं, उसके बराबर का पलड़ा वास्तव में बहुत ही भारी कर दिया गया है। अत: मुझे इस कमी के

[श्री श्यामानंदन सहाय]

साथ-साथ आगे बढ़ना है पर यह आशा है कि मेरे निवेदनों पर उपयुक्त क्षेत्रों में यथोचित विचार किया जायेगा। यद्यपि इस समय सभा में पंडित जी उपस्थित नहीं हैं, पर मैं समझता हूं कि उन्होंने इस काम की बागडोर एक और योग्य व्यक्ति संयुक्त प्रान्त आगरा और अवध के प्रधान मंत्री के हाथ में सौंप दी है। मैं उनसे विशेष रूप में निवेदन करूंगा कि सभा में मैं जो थोड़ी सी बातें रखूं, उन पर वे विचार करें और उतना विचार करें, जितना विचार करना उन पर उचित है।

निजी संपत्ति, परिवर्तित परिस्थितियां, काल का प्रभाव और जो शक्तियां हमें चारों ओर से घेरे हुए हैं, उनके बारे में सभा में काफी कहा जा चुका है। मैंने उन बातों को बड़े आदर और ध्यान से सुना है। पर उनकी विवरण पूर्ण आलोचना किये बिना मैं इस सभा में यह कहूंगा कि निजी संपत्ति पर अधिकार का अभिज्ञान एक ऐसी वस्तु है, जिसका विकास समाज के विकास के साथ-साथ हुआ। वह कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जो कि यकायक आकाश से टपक पड़ी हो, वरन तथ्य तो यह है कि पुराने समय में निजी संपत्ति पर अधिकार का अभियान शक्ति से ऊपर न्याय के सिद्धान्त का अभिज्ञान था। मित्र लोग शायद मुझसे सहमत न हों। मेरा उद्देश्य यह नहीं है कि इस वाद-विवाद में मैं आपका अधिक समय लूं, जो कि इस समय एक दकियानूसी विषय हो गया है। परन्तु यदि मैं इस तथ्य का आप लोगों पर जोर न डालूं कि वास्तव में यह विषय इतना सरल नहीं है, जैसा कि कुछ आलोचक समझते हैं और यहां खड़े होकर कहते हैं कि निजी संपत्ति के सिद्धान्त का भंडा फोड़ हो चुका, तो मैं अपने कर्त्तव्य से विमुख हो जाऊंगा। चाहे हम इस बात को चाहें या न चाहें, चाहे हम उसे स्वीकार करें या न करें, पर यह बात तो है ही कि यदि आप संपत्ति पर एक अविचारणीय विषय के रूप में विचार करते हैं, तो आप वास्तव में 'जिसकी लाठी, उसकी भैंस' के सिद्धान्त को फिर से ग्रहण करते हैं। एक समय यह लाठी शारीरिक बल के रूप में थी और आज वह जन बल के रूप में है।

मैं इस बात में पूरा विश्वास करता हूं कि उत्पादन के साधनों का समाजीकरण इस विकासमय रीति के लिये एक निश्चित स्थिति है। यह होना चाहिये। मेरा झगड़ा तो केवल उन लोगों से है: जो विकासमय रीति से उसे बाहर निकालना चाहते हैं और क्रांति द्वारा उसे लाना चाहते हैं। मैं उन रीतियों को नहीं मानता हूं, जो शीघ्रता से इसको इस रूप में क्रियान्वित करना चाहती है। कभी-कभी मेरे समाजवादी मित्र नवयुवकों के समान शीघ्रता में कार्य करना आरम्भ कर देते हैं, जिसमें केवल गाड़ी से छूट जाने का ही भय नहीं रहता है, वरन् यह भी भय रहता है कि उत्सव में सम्मिलित न हो सकेंगे। इस बात को विनिश्चित करने के लिये बड़ी योग्यता की आवश्यकता है कि समाज के ढांचे में इस महत्वपूर्ण परिवर्तन को करने के लिये उचित अवसर कौन सा है। यदि पूर्ण परिपक्व होने से एक दिन पूर्व ही आप आम तोड़ लेते हैं, तो आप उसकी मिठास, सुबास और स्वाद से वंचित

हो जाते हैं, चाहे आपको इस बात का संतोष हो जाये कि आम आपके पास है और आपने उसे खा भी लिया है। मैं इस बात का दावा करता हूं कि उत्पादन के समस्त साधनों के समाजीकरण तथा राष्ट्रीयकरण के महान कदम उठाने का अभी समय नहीं है। समाजवादी सिद्धान्त के कुछ महानतम विचारकों ने यह स्वीकार कर लिया है कि इसके पूर्व कि आप समाजवादी रीतियों और उत्पादन के समाजवादी साधनों को अंगीकार करें, व्यक्तिगत प्रयत्न पूर्ण पराकाष्ठा तक पहुंच जाना चाहिये।

मैं अपने प्रत्येक मित्र से, अपने उस सच्चे मित्र से जिसे नारा नहीं बल्कि देश प्यारा है, यह पूछता हूं कि क्या हमने वास्तव में इतनी उन्नति कर ली है कि हम देश की संपत्ति का वितरण कर सकें। यदि आज हम वितरण आरम्भ कर दें, तो माननीय प्रधान मंत्री, इस संशोधन के प्रस्तावक महोदय के शब्दों में—हम केवल अपनी निर्धनता का ही वितरण कर सकेंगे, क्योंकि हमारे पास केवल यही (निर्धनता) सम्पत्ति है। इसका अन्तिम विश्लेषण मनुष्य को ही एक मात्र आधार मानकर करना चाहिये और कोरे मनुष्य को ही नहीं, वरन् अपने मनोवैज्ञानिक विचारों से युक्त मनुष्य को। यदि आप निजी संपत्ति के बढ़ाने की प्रेरणा को मिटा देंगे, तो आप मनुष्य को अन्ततः यंत्रवत् बना देंगे। आरम्भ में शायद आपको कुछ फल मिले, पर मुझे पूर्ण विश्वास है कि वह काल की कसौटी पर खरा नहीं उतरेगा। जिन देशों में इस रीति को अपनाया गया था, उनमें भी अब लोग यह सोचने लगे हैं कि लोगों को कुछ निजी संपत्ति रखने देना और उसको बढ़ाने की प्रेरणा करने देना लाभदायक है।

अब हम भूमि समस्या पर विचार करें। मैं यह मानता हूं कि भूमि समाजीकरण और राष्ट्रीयकरण संबंधी स्थिति, उद्योगों की स्थिति जैसी नहीं है और न उसके समान ही है। उद्योगों से पर्याप्त कार्य नहीं लिया गया है, परन्तु भूमि से पर्याप्त कार्य ले लिया गया है। परन्तु फिर भी हमारी कठिनाई यह है कि इस दिशा में यदि हम एक बार कार्यारंभ कर देते हैं, तो हम और लोगों को भयभीत कर देते हैं और फिर हम स्वयं यह नहीं जानते कि हमें कहां रुकना है। मान लीजिये कि आप कुछ जमींदारों को हटा देते हैं, तो बाद में क्या होगा? भू-सम्पत्ति फिर भी कुछ लोगों के ही हाथों में रहेगी। यदि तुलना उन लोगों से की जाये, तो फिर भी भूमिहीन रहेंगे और जिनकी संख्या बहुत बड़ी है। अतः मैं जो प्रश्न पूछूंगा, वह यह है कि कब तक, कितनी बार और किस सीमा तक हम संतुलन करने के लिये अग्रसर होने के लिये तैयार हैं।

कुछ लोगों ने संपत्ति को चोरी का रूप दिया है। श्रीमान, इसका कारण मैं अज्ञानतर समझता हूं। वे इस बात को नहीं समझते हैं कि इस समय अधिकाराधीन अधिकांश संपत्ति वास्तव में खरीदी हुई है, चाहे वह भू-संपत्ति हो अथवा अन्य प्रकार की। कुछ वर्षों पूर्व तक भूमि में धन लगाना सबसे अधिक सुरक्षित था। बुढ़ापे के लिये, अचानक दुर्घटना में, विधवाओं और अनाथ बच्चों के लिये वह बीमा के समान समझी जाती थी। यह बात दूसरी है कि इन संपत्तियों को ले लेना ही हम विनिश्चित करें, पर इस सीमा तक तो हम न जायें कि संपत्ति को हम चोरी कहें। मेरी तुच्छ सम्मति में तो संपत्ति के विषय में इस प्रकार का जो विचार उत्पन्न हुआ है, वह बहुत ही गलत है।

[श्री श्यामानंदन सहाय]

मद्रास के एक और मित्र ऐसा विचार रखते हुए प्रतीत होते हैं कि उन्होंने यह कह कर एक बड़ा तीर मारा है कि उनके प्रान्त में जिन जमींदारों ने 40 लाख रुपये की आय से कार्यारम्भ किया था, वे अब 240 लाख रुपये की आय कर रहे हैं। मैं अपने मित्र को यह बता दूं कि उन्होंने केवल एक ही संख्या को लिया है; अर्थात् उस संख्या या आय को, जो अभी जमींदारी का बंदोबस्त करते समय की है। यदि वे किसी दूसरी संख्या को देखने का कष्ट उठाते, तो उनको इस बात का समाधान हो जाता कि उनकी इस बात में कुछ भी महत्व नहीं है। वह जमींदारी के बंदोबस्त होने के समय कृषि में आई हुई भूमि तथा इस समय खेती में आई हुई भूमि की संख्या है।

***श्री कला वेंकटा राव** (मद्रास : जनरल): मैं इन संख्याओं को जानता हूं, परन्तु क्या माननीय सदस्य मुझे यह समझा सकते हैं कि इससे परिस्थिति में किस प्रकार सुधार होगा?

***श्री श्यामानंदन सहाय:** मैं आशा करता हूं कि थोड़ी देर के बाद मैं अपने मित्र को विश्वास दिला सकूंगा और यह सिद्ध कर सकूंगा कि उससे परिस्थिति में किस प्रकार सुधार होगा। यदि वे इसकी खोज में और आगे बढ़े होते, तो उनको यह विदित हो जाता कि इस समय कृषि में आई हुई भूमि जो पहले थी, उससे बहुत अधिक है। क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि ये सब कृषि योग्य किस प्रकार बनी? क्या वह जादू के डंडे के जोर से बन गई? यह कहा जा सकता है और कदाचित ऐसा कहना ठीक ही है कि वह किसानों, खेत जोतने वालों के कारण बनी। मैं इस बात को मानता हूं। परन्तु साधनों की व्यवस्था किसने की? श्रीमान, ये प्रश्न हैं, जिन पर मैं समझता हूं कि उन लोगों को विचार करना चाहिये जिनको आज ईश्वर ने यह सत्ता दी है कि वे इन बातों पर विचार करें कि इस देश की राजस्व प्रणाली में क्या उन्नति की जाये, किस कार्य पद्धति का अनुसरण किया जाये और क्या परिवर्तन किया जाये। श्रीमान, जमींदारों के सौभाग्य से इस देश में भूराजस्व की दो प्रणालियां है। एक रैयतवाड़ी प्रथा है, जिसमें जमींदार नहीं है और दूसरी जमींदारी प्रथा है। यदि आप रैयतवाड़ी प्रथा में दिये गये लगान और जमींदारी प्रथा में दिये गये लगान की तुलना करें, तो आपको विदित होगा कि रैयतवाड़ी क्षेत्रों में लगानदारी की जो शर्तें हैं, वे किसी रूप में भी जमींदारी क्षेत्रों की शर्तों से अच्छी नहीं हैं। श्रीमान, यह मैं बंगाल के पलाउड आयोग के नाम से ज्ञात आयोग के आधार पर कह रहा हूं, जिसने अन्ततः जमींदारी प्रथा को मिटाने के लिये विनिश्चय किया था। उन्होंने भी यह स्पष्ट बता दिया था कि रैयतवाड़ी क्षेत्रों में भी लगानदारी की शर्तें किसी रूप में भी अच्छी नहीं हैं। यदि आप रैयतवाड़ी क्षेत्रों के लगान की तुलना जमींदारी क्षेत्रों के लगान से करेंगे, तो आपको आश्चर्य होगा। मद्रास प्रान्त में औसतन लगान 6 रुपये से 7 रुपये प्रति एकड़ के बीच में हैं और सजल भूमि के लिये वह औसतन 10 रुपये से 12 रुपये प्रति एकड़ के बीच में है; और बिहार, बंगाल तथा अन्य स्थानों में स्थायी रूप से बंदोबस्त किये गये। जमींदारी क्षेत्रों में लगान 3 रुपये से 4 रुपया प्रति एकड़ के बीच में है।

***श्री विश्वनाथ दास** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान, मैं एक औचित्य प्रश्न करने के लिये खड़ा होता हूं। वह यह है। हम यहां यह वाद-विवाद कर रहे हैं कि अनुच्छेद 24 को, जो सप्तम अनुसूची में की राज्य सूची के मद संख्या 9 का प्रयोग है, रखा जाये या नहीं। इस समय हमारे सामने जमींदारी भूमि के अर्जन करने के सम्बन्ध का कोई विधेयक लम्बित नहीं है, जिस पर हम विचार कर रहे हों, जिससे कि जमींदारी और रैयतवाड़ी भूमि के लगानों की तुलना की जाये। अत: इस प्रकार की तुलना और वाद-विवाद औचित्य से परे है।

***अध्यक्ष:** अन्य वक्ताओं ने इस विषय को सामान्य रूप में लिया है और जमींदारों के प्रतिनिधि को उसका दृष्टिकोण प्रस्तुत करने से मैं नहीं रोक सकता हूं।

***श्री श्यामानंदन सहाय:** श्रीमान, वास्तव में ठीक स्थिति यह है कि अनुच्छेद 24 पर विचार किया जा रहा है और वह निजी संपत्ति पर प्रतिकर दिये जाने के संबंध में है, और कई बार यह सुझाव दिया जा चुका है कि प्रतिकर न दिया जाये और निजी संपत्ति पर अधिकार को मानना आवश्यक नहीं है। भूमि एक प्रकार की निजी संपत्ति है। अत: इस विचार के अतिरिक्त भी कि अन्य व्यक्ति इस विषय पर भाषण दे चुके हैं, मैं समझता हूं कि मुझे यह कहने का हक है कि निजी संपत्ति को मानना चाहिये और उसके अर्जन पर पूर्ण प्रतिकर देना चाहिये।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** यह मान लिया गया है कि जमींदारी कोई संपत्ति नहीं है।

***श्री श्यामानंदन सहाय:** श्रीमान, एक और प्रकार की भी निजी संपत्ति है और वह उद्योग है। उद्योगपतियों के बारे में हमने ऐसा बहुत सुना है कि उन्होंने बहुत लाभ उठाया है। हमारे मित्रों और आलोचकों ने केवल उस लाभ की ओर ही ध्यान दिया है, जो उद्योग तथा उद्योगपतियों को हुआ है? पर क्या उन्होंने यह सोचा है कि इस लाभ से वे क्या करते हैं? यदि मैं ऐसा कह सकता हूं, तो यह कहूंगा कि इसका उत्तर सरल है और वह है—कारखाने और अधिक संख्या में कारखाने। इस देश में वर्तमान कालीन पूंजीवादियों का यदि आप वर्णन करना चाहते हैं, तो उनका "कारखाने बनाने वाला समाज" के सदस्य कहने से अधिक अच्छा या अधिक बुरा वर्णन आप नहीं कर सकते हैं। मैं अपने मित्रों से निवेदन करता हूं कि वे इस बात पर विचार करें कि देश के लिये यह अच्छा है या बुरा, हमारे सामने बड़ी-बड़ी कठिनाइयां हैं। प्रत्येक दिन हम यह सुनते हैं कि उत्पादन पूर्ण रूप में होना चाहिये और अधिक उत्पादन होना चाहिये। यदि हम उत्पादन के सब साधनों का समाजीकरण आरम्भ कर दें और निजी प्रयत्नों को सर्वोत्तम रूप से कार्य करने का कोई अवसर न दें, तो यह एक दम कैसे हो सकता है?

अत: श्रीमान, संपत्ति पर अधिकारों को मानने और इस संविधान में उनकी प्रत्याभूति करने पर मुझे अपने नेताओं को बधाई देनी चाहिये। बधाई देते हुए मेरे

[श्री श्यामानंदन सहाय]

मन में एक विचार आता है कि प्रतिकर खंड का नया मसौदा केवल संपत्तियों के प्रकारों में ही नहीं वरन् एक ही प्रकार की संपत्ति में कुछ विभेद उत्पन्न करता है। उड़ीसा के मेरे मित्र श्री विश्वनाथ दास चाहे जो कुछ कहें, सच बात यह है कि और इस बात को माननीय प्रस्तावक महोदय ने कल अपने भाषण में बिल्कुल स्पष्ट कर दिया था कि खंड (4) और (6) को केवल कुछ प्रान्तों में कुछ विधेयक और अधिनियमों संबंधी प्रयोजन की पूर्ति के लिये ही मसौदे में रखा गया है। यदि श्री विश्वनाथ दास इस देश की बातों को समझने का कष्ट करते, तो उनको यह ज्ञात हो जाता कि उनका संबंध केवल भूमि से ही है।

इस मसौदे में हमें प्रतीत होता है कि स्वयं अपनी न्यायपालिका से बचने का प्रयत्न किया गया है। सर्वत्र यह एक स्वीकृत सिद्धान्त है कि न्यायपालिका लोकतंत्र की अन्तिम संरक्षिका तथा उसे सुरक्षित रखने वाला साधन है। अतः श्रीमान, क्या यह उचित होगा कि अपने संविधान के प्रारम्भ में ही एक ऐसी प्रक्रिया निर्धारित करें, जिसके द्वारा, चाहे वह कितने ही न्यून रूप में क्यों न हो, हम अपनी न्यायपालिका के प्रति असम्मान तथा विश्वास का अभाव प्रकट करें? इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता और न इस बात पर जोर देने की आवश्यकता ही है कि न्यायपालिका विधानमंडल की शक्तियों को ग्रहण नहीं कर सकती है। यह एक साधारण सी बात है कि वह ऐसा नहीं कर सकती है। न्यायपालिका आपकी विधि का केवल निर्वचन कर सकती है और वह एक उचित तथा ठीक रीति से। मैं पूछता हूं कि इस समय क्या यह बुद्धिमानी होगी कि न्यायालयों के क्षेत्राधिकार को स्पष्ट रूप से मिटाने के लिये ऐसा उपबन्ध बनाया जाये? इसके पक्ष में हमारे समक्ष कुछ आधार प्रस्तुत किये गये हैं और कुछ कठिनाइयां बताई गई हैं।

हमें यह बात नहीं भुला देनी चाहिये कि लोकतंत्र तथा स्वेच्छाचारी, अल्पजनसत्तात्मक इत्यादि प्रकार के अन्य शासनों में मुख्य अंतर यह है कि लोकतंत्रात्मक शासन पद्धति केवल परस्पर नागरिकों में ही नहीं, वरन् नागरिक और राज्य में भी उचित तथा निष्पक्ष न्याय की व्यवस्था करती है और जिस पद्धति का इस प्रयोजन के लिये विकास किया, वह क्या है? न्यायपालिका के अतिरिक्त अन्य किसी को मैं तो नहीं समझता हूं। अतः मैं निवेदन करता हूं कि इस बात को मानना तथा यह निर्धारित करना कि किसी प्रयोजन के लिये न्यायालयों का अधिकार क्षेत्र मिटा दिया जाये, गलत होगा।

श्रीमान, जो कठिनाई माननीय प्रस्तावक महोदय द्वारा विचारी गई है, वह अधिकांश रूप में वह है, जिसको उन्होंने 'विलम्बकारी तथा वित्तीय' कहा है। प्रस्तावक महोदय ने अपने भाषण में कहा था "यदि हम इन अधिनियमों पर न्यायालय द्वारा विचार होने दें, तो इसके कारण हम इतनी लम्बी मुकदमेबाजी में फंस जायेंगे कि हम कोई भी सुधार नहीं कर सकेंगे और यदि हम बाजार भाव के अनुसार प्रतिकर दें, तो जमींदारी उन्मूलन करने के लिये वित्तीय साधन हम कभी नहीं जुटा सकेंगे।" सम्मानपूर्वक मैं उनसे मत-विरोध रखता हूं। केवल इस आधार पर किसी लम्बी

मुकदमेबाजी के कारण सरकार के मार्ग में बाधा नहीं हो सकती है कि सरकार किसी समय भी एक ऐसा वैध उपबन्ध बना सकती है कि वह जो कुछ प्रतिकर उचित समझे, वह देगी, परन्तु यदि बाद में न्यायालय यह विनिश्चित करे कि उससे अधिक प्रतिकर दिया जाना चाहिये, तो सरकार उतना प्रतिकर देगी। यह कोई नई प्रक्रिया नहीं है, भूमि अर्जन अधिनियम के अधीन इसका पालन होता है। भूमि अर्जन पदाधिकारी पंचाट निश्चित करता है, संपत्ति पर अधिकार करता है और यदि अन्त में न्यायाधीश यह विनिश्चित करता है कि अधिक प्रतिकर दिया जाना चाहिये, तो उस पक्ष को अतिरिक्त राशि दे दी जाती है। अत: भूमि के विषय में जो सुधार हम देश में करना चाहते हैं, उसके मार्ग में लम्बी मुकदमेबाजी की बात रुकावट के रूप में नहीं आयेगी।

अब वित्तीय विषय को लीजिये। तीन प्रान्त, जिनसे हमारा इस समय सम्बन्ध है, और जिनके लिये मुझसे यह कहा गया है कि खंड (4) और (6) का विशेष रूप से मसौदा बनाया गया है, उनके विषय में हम यह देखते हैं कि जैसा माननीय प्रधान मंत्री तथा मद्रास के राजस्व मंत्री ने कई बार स्पष्ट कर दिया है मद्रास के विषय में तो कोई कठिनाई नहीं है। उनके अनुसार कुछ केवल 15 करोड़ रुपये की वित्तीय आवश्यकता है, जिसको मद्रास जैसे प्रान्त के लिये यदि एक वर्ष में नहीं तो अधिक से अधिक दो या तीन वर्ष में पूरा करना कठिन नहीं होना चाहिये। संयुक्त प्रान्त में माननीय मुख्य मंत्री और मंत्रिमंडल के सदस्यों ने एक ऐसी योजना निकाली है, जो मैं समझता हूं कि जितना जमींदारों को देना है, उससे भी अधिक द्रव्य संचित करेगी। वह एक प्रकार की ऐसी योजना होगी, जिसे आप सुधार न्यास योजना कह सकते हैं, जिसमें अन्त में न्यासियों को हानि की अपेक्षा लाभ होता है। मेरी सम्मति के अनुसार बिहार में इन दोनों प्रान्तों की अपेक्षा स्थिति अधिक सरल है, क्योंकि वहां की सरकार बड़ी-बड़ी सम्पदाओं का अर्जन आरम्भ में करना चाहती है और उनकी बचत से वे छोटी-छोटी सम्पदाओं का अर्जन करने का विचार रखती है। उसने भारत सरकार को यह भी सूचित कर दिया है। कि वह अभी 5000 रुपये के कम की जमींदारी पर अधिकार करना नहीं चाहती है (कदाचित् अभी शब्द का प्रयोग मैं अपनी ओर से कर रहा हूं और इस शब्द का प्रयोग बिहार सरकार ने शायद नहीं किया है।) यदि ऐसा है, तो बिहार में भी प्रतिकर देने की समस्या कठिन नहीं है।

अत: मैं निवेदन करता हूं कि न तो लम्बी मुकदमेबाजी और न वित्तीय समस्या ही इतनी जटिल है कि संविधान में इस प्रकार का उपबन्ध बनाये बिना, जिस पर मैं इस समय वाद-विवाद कर रहा हूं, भूमि सुधारों को न किया जा सके।

श्रीमान, मेरा विश्वास है कि हमारे प्रशासक इन कठिनाइयों के प्रति सच्चे तथा शुद्ध रूप से सशंकित हों। यदि आज भी प्रस्थापनायें वैसी ही हैं, जैसी कि थी,

[श्री श्यामानंदन सहाय]

तो मुझे इन सरकारों में किसी सरकार के भूमि सुधार के उपक्रम करने में उन वित्तीय साधनों के ही होते हुए, जो उनके कब्जे में हैं, कोई शंका नहीं है।

अब हमें यह देखना चाहिये कि जमींदारी समस्या और अर्जन करने पर प्रतिकर देने पर देश और कांग्रेस किस रूप में देखती आई है। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आपको यह विदित होगा कि 1995 तक में अखिल भारतीय कांग्रेस ने एक संकल्प पारित किया था, जिसको मैं सभा की सूचनार्थ पढ़कर सुनाऊंगा।

वह इस प्रकार है:

"इस कांग्रेस का यह दृढ़ विश्वास है कि भूमि के सम्बन्ध में राज्य की मांग पर एक युक्तियुक्त तथा निश्चित परिसीमन रखना चाहिये और जहां स्थायी बंदोबस्त प्रवृत्त नहीं है, वहां सब क्षेत्रों में, चाहे वह रैयतवाड़ी हो या जमींदारी, स्थायी बंदोबस्त पुनः स्थापित करना चाहिये या 60 वर्ष से अन्यून काल के लिये बंदोबस्त पुनःस्थापित करना चाहिये।"

कुछ लोग यह सोचते प्रतीत होते हैं कि 1915 कब की समाप्त हो गई और मैं कोई ऐसा राग अलाप रहा हूं, जो एक दीर्घ काल से निष्प्राण सी है या मिल चुकी है। पर मैं समझता हूं कि विशेषकर ऐसे महत्वपूर्ण विषय पर उन सम्मतियों पर विचार न करना बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं होगा, जो केवल 35 वर्ष पूर्व ही मानी गई थीं।

खैर, आधुनिक काल को लेते हुए भी, श्रीमान, मैं आपको सन् 1939 में वृन्दाबन में सरकार पटेल द्वारा दिये गये उस वक्तव्य का स्मरण कराऊंगा, जहां तक आप और महात्मा जी भी उपस्थित थे। जमींदारी प्रथा के उन्मूलन की ओर निर्देश करते हुए सरदार ने यह प्रकट किया था कि भारत का राष्ट्रीय और आर्थिक कल्याण इसमें नहीं है। कांग्रेस के घोषणा पत्र में, यद्यपि उसमें राज्य और किसान के मध्य किसी अभिकर्त्ता के हटाने का समर्थन किया गया था, यह माना गया था—मैं उस संकल्प की भाषा का ही प्रयोग कर रहा हूं—'कि उचित प्रतिकर देकर अन्तर्वर्ती अभिकर्ताओं के अधिकार अर्जित किये जायें।' यहां तक कि 1948 और 1949 तक में (दोनों वर्षों की 6 अप्रैल को) भारत के माननीय प्रधान मंत्री ने नीति के दो वक्तव्य निकाले थे और उन दोनों में उन्होंने यह स्पष्ट कहा था कि निजी सम्पत्ति का अर्जन केवल उचित तथा समप्रतिकर देकर ही किया जायेगा। अतः सम प्रतिकर एक अभिज्ञात तथ्य प्रतीत होता है।

जो बात मुझे वास्तव में परेशान कर रही है, वह यह है कि यह कौन विनिश्चित करेगा कि समप्रतिकर क्या है। राज्य संपत्ति पर अधिकार कर रहा है; नागरिक इस विषय में अन्तर्ग्रस्त हैं। क्या राज्य अन्तिम निर्णायक होगा? समप्रतिकर निश्चित करने के लिये राज्य कोई भी यंत्र स्थापित करे, पर वह यंत्र स्वयं सरकार के अतिरिक्त अन्य कोई होना चाहिये। कुछ मिनट पूर्व बोलने वाले एक माननीय मित्र ने कहा था कि किसी प्रकार का प्रशासी न्यायाधिकरण स्थापित किया जा सकता है। इसके

विरुद्ध हमें कुछ नहीं कहना है। परन्तु जब नागरिक और राज्य में परस्पर कोई मामला हो, तो ऐसा कोई यंत्र स्थापित करना चाहिए, जो यह विनिश्चित करे कि समप्रतिकर क्या होगा, चाहे वह यंत्र न्यायिक हो, चाहे प्रशासी न्यायाधिकरण हो।

इसके पश्चात् आइये, श्रीमान, हम स्वयं इस संविधान-सभा को लें और इसमें जो मत प्रकट किये गये हैं तथा जो सिद्धान्त स्वीकार किये हैं, उनकी जांच करें। उद्देश्य मूलक संकल्प में, जिसको हम यहां पारित कर चुके हैं, हमने यह स्पष्ट निर्धारित कर दिया है कि राज्य के नागरिकों के लिये यह संविधान किस बात का प्रयास करेगा और उनको किन-किन बातों की प्रत्याभूति देगा। अन्य बातों के साथ-साथ विधि के समक्ष परिस्थिति की समता की प्रत्याभूति की गई है। श्रीमान, यदि हम इस प्रत्याभूति की तराजू पर खंड (4) और (6) के इस मसौदे को तोलें, तो इस बात में मुझे कोई संदेह नहीं है कि यह सभा इस बात को स्वीकार करेगी कि वहां तक खंड (4) और (6) का सम्बन्ध है, इनमें परिस्थिति की कोई समता नहीं है। विधि के समक्ष समता का दावा करने की बात तो दूर रही, ये तो हम को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत होने तक का अवसर नहीं देते हैं। और किस लिये? इस बात पर विचार करने के लिये नहीं कि प्रतिकर उचित है या नहीं। खंड (2) केवल प्रतिकर देने के सिद्धान्त का निर्धारण करता है, अन्य किसी स्थान में हमने यह नहीं कहा है कि प्रतिकर दिया जायेगा। और खंड (4) और (6) में यह कहा गया है कि "इस प्रकार अनुमति प्राप्त विधि पर किसी न्यायालय में इस आधार पर प्रश्न किया जायेगा कि यह इस अनुच्छेद के खंड (2) के उपबन्धों का विरोध करती है।" और यह विरोध प्रतिकर के समूचे सिद्धान्त पर हो सकता है। यहां तक कि उदाहरण के रूप में यदि कोई प्रान्त प्रतिकर न देना विनिश्चय करता है, तो इसका विरोध न्यायालय में नहीं किया जा सकता है। अभी उस दिन माननीय प्रधान मंत्री ने मसौदे के इस खास भाग पर बोलते हुए यह कहा था कि यह उपबन्ध कर दिया गया है कि यदि संविधान से कुछ छल किया जाता है, तो उस विषय को न्यायालय में ले जाया जा सकता है। मैं उन विधि विशेषज्ञों से जो सभा में उपस्थित हैं और विशेषकर संयुक्त प्रान्त के मुख्य मंत्री से यह निवेदन करूंगा कि वे इस बात पर विचार करें कि क्या खंड (4) और (6) में यह गुंजाइश है कि कोई पक्ष, यदि विधानमंडल द्वारा कोई प्रतिकर नहीं दिया जाता है तो वह, न्यायालय में जा सके। यदि स्थिति यही है, तो मैं निवेदन करता हूं कि इस खंड को यदि पूर्णतया अपमार्जित करने के लिये नहीं तो तो उसमें संशोधन करने के लिये मैंने एक बड़ा मजबूत मामला बना लिया है।

इस विषय को इस सभा में हुए वाद-विवाद ने तथा खंड 13 (च) ने और भी अधिक स्पष्ट कर दिया है, जिस खंड में हमने "संपत्ति के अर्जन, यापन और संधारण" की प्रत्याभूति की है और आगे चलकर हमारे संविधान के अनुच्छेद 15 में जिसमें हमने प्रत्येक व्यक्ति को "विधियों के समरक्षण" की प्रत्याभूति की है। मैं यह पूछूंगा—क्या यह विधियों का समरक्षण है कि एक जमींदार वर्ग को उस की अर्जित की गई सम्पत्ति के लिये प्रतिकर के अधिकार के सम्बन्ध में न्यायता

[श्री श्यामानंदन सहाय]

के अधिकार से वंचित किया जाये और अन्य प्रान्त के अन्य जमींदारों को वही अधिकार दिया जाये? इस विषय में तथ्य की बात यह है कि केवल तीन प्रान्तों पर प्रभाव पड़ता है। मान लीजिये बाद में जमींदारी अर्जन करने के लिये यदि मध्यप्रान्त, उड़ीसा या बंगाल कोई विधेयक प्रस्तुत करता है, तो उन प्रान्तों के जमींदारों को विधि का रक्षण प्राप्त होगा। उनको न्यायालय जाने तथा न्याय कराने का अधिकार होगा। दूसरी ओर हम लोगों को जो कि बिहार संयुक्त प्रान्त और मद्रास के हैं, उनको इस अधिकार से वंचित किया जा रहा है। मैं इस सभा से यह पूछूंगा कि क्या यही "विधि का समरक्षण" है? "विधि के समरक्षण" की हमने प्रत्याभूति की है; इसको हम पारित कर चुके हैं। कुछ मित्र खड़े होकर यह कहेंगे "श्रीमान, यह सभा सम्पूर्ण प्रभुत्व संपन्न निकाय है और हम सब कुछ कर सकते हैं।" ऐसे मित्रों से मेरा विनम्र निवेदन यह है कि इस सभा को चाहे अपने आपको मूर्ख बनाने का अधिकार हो, पर बुद्धिमान लोग सदैव इस सभा को यही परामर्श देंगे कि वह ऐसी बात का प्रयत्न न करे। श्रीमान, खंड (4) और (6) में जो बात हम रख रहे हैं, वह महत्वपूर्ण है। यहां तक कि जो संशोधन श्री मुन्शी ने भेजा था कि प्रमाणित करने के पूर्व राष्ट्रपति उस विधेयक को, किसी ऐसे संशोधन के लिये जिसे वह आवश्यक समझे, वापस कर सकता है, उस संशोधन को पेश नहीं किया गया है। अतः इसका अर्थ यह निकलता है कि राष्ट्रपति या तो उस विधेयक को स्वीकार करे या अस्वीकार। और किसी भी राष्ट्रपति के लिये समूचे विधेयक को अस्वीकार कर देना बहुत ही कठिन होगा। मैं संयुक्त प्रान्त के माननीय मुख्य मंत्री अथवा अन्य मित्रों से यह पूछता हूं कि क्या यह ठीक नहीं है कि यहां कोई ऐसा उपबन्ध रखा जाये, जो राष्ट्रपति को यह अधिकार दे कि वह सम्बद्ध विधान मंडल को अपनी मंत्रणा तथा सम्मति दे सके? क्या उस पर केवल उसका स्वीकार करना तथा अस्वीकार करना छोड़ देना ठीक होगा? मैंने समझा कि वह प्रस्थापना ऐसी है कि जिसे देखते ही अस्वीकार कर दिया जायेगा और अब भी समय है।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यरः** मैंने समझा कि उपबन्धों में यह निहित है।

***श्री श्यामानंदन सहायः** निहित बातें तो बहुत सी हैं, पर हम कुछ बातों को स्पष्ट भी कराना चाहते हैं। मैं निवेदन करता हूं कि यह एक ऐसी बात है, जिस पर गम्भीर विचार करना चाहिये। अभी समय नहीं बीता है। मैं समझता हूं कि अब भी समय है कि इन खंडों में कोई ऐसा संशोधन प्रस्तुत किया जा सकता है और आपकी विशेष सम्मति से तो वह इसी समय हो सकता है।

श्रीमान, मैं जानता हूं कि मैंने आपका बहुत समय लिया है। परन्तु समाप्त करने के पूर्व मैं अपनी बातों को फिर दुहराऊंगा। जैसा कि मैंने कहा था कि कांग्रेस घोषणा पत्र अप्रैल, 1949 में ही माननीय प्रधान मंत्री द्वारा की गई नीति घोषणा, उद्देश्यमूलक संकल्प और मूलाधिकार समिति का प्रतिवेदन हमने केवल प्रतिकर पर अर्जन के जिस सिद्धान्त को स्पष्ट रूप में स्वीकार किया है, उससे हम खंड (4)

और (6) में विमुख न हों। और फिर हमारे संविधान के मसौदे में अनुच्छेद 13 (च) और 15 ऐसे हैं, जो सब नागरिकों के लिये विधि का समरक्षण करने की प्रत्याभूति करते हैं और यद्यपि इस सुझाव को देर में आया हुआ समझा जायेगा, पर मैं निवेदन करूंगा कि खंड (4) और (6) का अपमार्जन करने के लिये संशोधन आये हुए हैं और प्राधिकारियों को इन सुझावों पर भी विचार करने का अधिकार है, जिन को मैं इतनी देर के बाद पेश कर रहा हूं।

जैसाकि मैं अभी कह चुका हूं, राष्ट्रपति का प्रमाणपत्र उसको कोई विकल्प प्रदान नहीं करता है और मैं समझता हूं कि अन्ततोगत्वा इसका फल यही होगा कि उसे विधेयक स्वीकार करना पड़ेगा। श्रीमान, चूंकि आपने इस विषय पर वाद-विवाद करने के लिये बारह घंटे दिए हैं, मैं नहीं समझता हूं कि इस समाजवादी कार्यपद्धति के अनुसार मुझे पर्याप्त समय मिला हो, जिसमें मैं जमींदारों के विचारों को रख सकता था। फिर भी मैं अब समाप्त करूंगा। परन्तु समाप्त करने के पूर्व मैं फिर प्राधिकारियों से निवेदन करूंगा कि केवल जमींदारों के हित के लिये ही नहीं, वरन् संविधान निर्माण के सामान्य हित में उन बातों पर विचार करें, जो मैंने कही हैं। यहां मुझे एक बहुत महत्वपूर्ण बात इस समय याद आई, जिसका उल्लेख स्वर्गीय पंडित मोतीलाल ने "सर्चलाइट" नामक प्रसिद्ध मानहानि के मामले में बहस करते हुए किया था। उन्होंने कहा था कि न्यायपालिका के लिये केवल यही आवश्यक नहीं है कि वह अच्छी विधि निर्धारित करे, पर यह भी समान रूप से महत्वपूर्ण है कि वह यह भी विश्वास उत्पन्न कराये कि वह अच्छी विधियां निर्धारित कर रही हैं और नागरिक का हित उसके हाथों में सुरक्षित है। श्रीमान, विधानमंडल के लिये यह और अधिक महत्वपूर्ण है और संविधान-सभा के लिये तो यह और भी अधिक महत्वपूर्ण है कि हम ऐसी विधि निर्धारित करें, जो जनता के समस्त वर्गों में यह विश्वास उत्पन्न करे कि वह उचित, ठीक तथा सम है। मैं सभा से निवेदन करता हूं कि वह खंड (4) और (6) को अपमार्जन करने के मेरे सुझाव को स्वीकार करे। यदि अपने सुझाव पर इस सभा की स्वीकृति प्राप्त करने में मैं असफल रहा, तो लार्ड बाइटन के शब्दों में यह कह कर मैं संतोष कर लूंगा "कि मेरे लिये केवल यही सान्त्वना है कि हम पर अत्याचार करने वाले आखिर हैं, हमारे ही देशवासी।"

***पं. बालकृष्ण शर्मा:** अध्यक्ष महोदय, यह एक आश्चर्यजनक बात है कि इस प्रस्थापना ने, जिसे माननीय प्रधान मंत्री ने पेश किया है और जिसका श्री अल्लादी कृष्णास्वामी जैसे महान स्मृतिज्ञ ने समर्थन किया है, सभा में एक प्रकार के विरोधी मत तथा भावनाओं को उत्तेजित किया है। यहां मेरे जमींदार मित्र हैं, जो इसके विरोधी हैं, क्योंकि वे यह सोचते हैं कि इस अनुच्छेद में कोई ऐसी बात है जिसके द्वारा उनको कष्ट होगा। कुछ अन्य व्यक्ति मुझ जैसे भी हैं जो माननीय प्रधान

[पं. बालकृष्ण शर्मा]

मंत्री द्वारा पेश किये गये इस संशोधन का इस कारण विरोध करते हैं कि वे समझते हैं कि इसमें कुछ ऐसी कमियां हैं, जो हमारे राज्य के लिये—चाहे वह प्रान्तीय हो अथवा केन्द्रीय—लोक सुख और सार्वजनिक कल्याण को शीघ्र प्राप्त करने के हेतु कार्य करने में कठिनाई उत्पन्न करेगी। यहां हमने कुछ ऐसे सिद्धान्त निर्धारित किये हैं, जो अधिकतम व्यक्तियों के लिये अधिकतम कल्याण के आधार पर न्याययुक्त नहीं माने जा सकते हैं। इस अनुच्छेद का खण्ड (2) निश्चित रूप से यह निर्धारित करता है कि लोक-प्रयोजन के लिये संपत्ति का अर्जन हो सकता है, परन्तु प्रतिकर देने के सिद्धान्तों को निर्धारित किये बिना अथवा अर्जित वस्तुओं के लिये वास्तविक रूप में प्रतिकर दिये बिना उनको अर्जित नहीं किया जा सकता। जब कि इस अनुच्छेद मैं यह कहा गया है कि "जिस संपत्ति पर कब्जा किया जाता है या जिसको अर्जित किया जाता है, वह तब तक कब्जाकृत या अर्जित नहीं की जायेगी, जब तक कि वह विधि उस सम्पत्ति के लिये प्रतिकर का उपबन्ध न करती हो, या प्रतिकर की राशि नियत न करती हो या उसके सिद्धान्तों का उल्लेख न करती हो।" तो इससे यह स्पष्ट विदित होता है कि हम यहां एक प्रकार के विधि सम्बन्धी श्लेष के लिये गुंजाइश छोड़ रहे हैं। यहां आज श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने यह निश्चित रूप से कहा है कि यह खंड किसी व्यक्ति को न्यायालय जाने और इस आधार पर सरकार के विनिश्चिय पर आपत्ति करने का अधिकार नहीं देता है कि जो प्रतिकर दिया जा रहा है, यह अपर्याप्त है अथवा जो सिद्धान्त निर्धारित किये गये हैं, वे किसी भी रूप में अनुचित तथा कष्ट युक्त हैं। यह वह बात है, जो महान स्मृतिज्ञ श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने हमसे कही।

अब यदि वास्तव में ऐसा ही है, तो हम उस संशोधन को क्यों न स्वीकार करें, जो मेरी बहन श्रीमती रेणुका रे द्वारा पेश किया गया है? उस संशोधन में उन्होंने यह निश्चित रूप में कहकर बादहेतु को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि उपरोक्त किसी भी विधि बनाने वाले उपबन्ध पर किसी भी न्यायालय में इस आधार पर आपत्ति नहीं की जायेगी कि जिस प्रतिकर की व्यवस्था की गई, वह अपर्याप्त है अथवा प्रतिकर के जिस सिद्धान्त या रीति का उल्लेख किया गया है, वह अनुचित तथा कपटमय है। यदि इस अनुच्छेद के खंड (2) का वास्तव में वही अर्थ है जो कि श्री अल्लादी कृष्णास्वामी बताते हैं अथवा जो अन्य विधि के पंडित मानते हैं, तो मैं समझता हूं कि ऐसा कोई कारण नहीं है कि माननीय प्रधान मंत्री श्रीमती रेणुका रे के संशोधन को स्वीकार न करें, जिससे कि विषय स्थिति स्पष्ट हो जाती है और कोई सन्देह नहीं रहता है। सभा को समक्ष जो प्रस्तावना है, उसके सम्बन्ध में मेरा यह पहला सुझाव है। जिस रूप में यह खंड है, उसमें कई कमियां हैं। ऐसे होने के कारण हमारी इन सब शिकायतों से कि या तो न्यायपालिका इसमें हस्तक्षेप करेगी या हम न्यायपालिका को एक तीसरा सदन बना रहे हैं या ऐसी ही अन्य बातों से हमें कोई लाभ नहीं होगा, क्योंकि जिस रूप

में यह प्रस्थापना है, उसका स्वार्थात व्यक्तियों द्वारा इस रीति में निर्वचन किया जा सकता है, जो हमारी सामाजिक उन्नति में दुर्गम कठिनाइयां उत्पन्न करेगा। अत: मेरा निवेदन यह है कि इस प्रस्थापना को स्वीकार करते हुए उसके साथ-साथ हम श्रीमती रेणुका रे के संशोधन को भी स्वीकार करें।

यदि मैंने इस अनुच्छेद को ठीक-ठीक समझ लिया है, तो इसका आशय केवल यही है, कि हम यहां वह सिद्धान्त निर्धारित कर रहे हैं, जो सार्वजनिक कल्याण के लिये कुछ कार्य करने की दिशा में राज्यों को सुविधा प्रदान करेगा और उस सार्वजनिक कल्याण की प्राप्ति में किसी निजी स्वार्थ द्वारा बाधा नहीं होने दी जायेगी। मैं समझता हूं कि इस प्रस्थापना का यही सार है।

सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया:
सर्वे भद्राणी पश्यन्तु मा कश्चित दु:खभाग् भवेत्।।

यह है, जिसे हम प्राप्त करना चाहते हैं। समाज के प्रत्येक प्राणी को इस संसार में सुखी होने दो। किसी को कोई रोग न हो। प्रत्येक व्यक्ति को सत्य के देखने की शक्ति का विकास करने दो और किसी को दुखी न होने दो। यह वह प्रार्थना है, जो भारतीय विचार की महान, गहनता से उत्पन्न हुई है और यह वह प्रार्थना है, जिसमें हम अनादि काल से विश्वास करते रहे हैं।

श्रीमान, मैं समझता हूं कि यह अनुच्छेद इस प्रार्थना को साकार बनाने का प्रयत्न है और हमारे सामाजिक और आर्थिक ढांचे में परिवर्तन करने के लिये सरकार के मार्ग को प्रशस्त करने के लिये है। परन्तु जैसा कि मैंने बताया है कि खंड (2) दोषयुक्त है। यदि, जैसा कि श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने कहा है, वह दोषयुक्त नहीं हैं। तो खंड (4) और (6) की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है। यदि वास्तव में इस अनुच्छेद में निर्धारित किये गये सिद्धान्तों को हमने न्यायालय के क्षेत्राधिकार से परे कर दिया है, तो खंड (4) और (6) बिल्कुल अनावश्यक हैं। परन्तु हमने इन खंडों को केवल इस लिये रखा है कि हमने यह चाहा कि कुछ सामाजिक विधानों का सुनिश्चियन किया जाये, जो संयुक्त प्रान्त तथा मद्रास में बनाये जा रहे हैं या बनाये जायेंगे। अत: हम सोचते हैं कि खंड (2) में ऐसी कोई बात हो सकती है, जो इस दशा में हमारे प्रयत्नों का खंडन करे। यदि हम इन बातों को अव्यक्त रूप में रख कर यहां इस प्रस्थापना पर वाद-विवाद कर रहे हैं, तब तो मैं सभा से निवेदन करूंगा कि वह ऐसा न करे और श्रीमती रेणुका रे द्वारा प्रस्तुत किये सुझाव को स्वीकार कर इस बात को बिल्कुल स्पष्ट कर दे और संदेह के लिये कोई स्थान न रहने दे।

संपत्ति के बारे में कई प्रश्न उठाये गये हैं: निजी सम्पत्ति की अक्षुण्णता के बारे में प्रश्न किये गये हैं: निजी सम्पत्ति के बारे में ये प्रश्न कि उससे कार्य करने और समाज को उन्नत बनाने की प्रेरणा मिलती है, तथा इस प्रकार के सम्बन्ध में भी प्रश्न की विधि पुस्तक में इस प्रकार की विधि को लाने की अवांछनीयता, जो उस प्रेरणा का नाश करेगी, जिसका व्यक्ति उस समय अनुभव करता है, जबकि

[पं. बालकृष्ण शर्मा]

उसे यह आश्वासन दे दिया जाता है कि उसकी निजी सम्पत्ति को छूआ तक नहीं जायेगा। ये ऐसे प्रश्न हैं, जो मूलवाद हेतुओं के कारण हैं। इस समय जो मूलवाद हेतु सभा के समक्ष प्रस्तुत है, वह यह है कि अपने संविधान में हम किस प्रकार की सामाजिक विचारधारा को रखें और किस प्रकार की सामाजिक विचारधारा को उसमें न आने दें। यह सिद्धान्त ओर सब बातों से महान है—किसी विचार को पुष्ट करने वाला वह सिद्धान्त अथवा कार्य की कोई ऐसी प्रणाली, जो मुख्य रूप से समूचे समाज के संचालन पर प्रभाव डालता है। हमने यह देखा है कि 1890 के लगभग डार्विन द्वारा प्रस्तुत किया गया सिद्धान्त-समर्थ जीवित रहता है—सच माना गया था। शारीरिक विकास के आधार पर इस सत्य को सिद्ध किया गया था और उन वैज्ञानिकों के पर्यवेक्षण के आधार पर, जिन्होंने सर्व प्रथम समाज के समक्ष विकास का सिद्धान्त प्रस्तुत किया कि प्रकृति पूर्णतया संघर्षरत है और केवल समर्थ ही जीवित रह सकते हैं और प्रकृति में चारों ओर घोर युद्ध हो रहा है। यह ज्ञान, यह विचार पाश्चात्यों के मन में यहां तक जड़ जमा गया है कि उनका प्रत्येक राष्ट्र शस्त्रास्त्र की वृद्धि कर समर्थ बनने के प्रत्यन में लगा और इसका फल यह हुआ कि पच्चीस या तीस वर्षों में उनके यहां दो सर्वनाशकारी युद्ध हुए। हमें यह देखना है कि समाज के प्रति यह विचार कि केवल समर्थ ही जीवित रहेगा, ठीक है या नहीं। बाद में हमने यह मालूम किया कि प्रकृति में केवल समर्थ के जीवित रहने का सिद्धान्त ही क्रियान्वित नहीं हो रहा है, वरन् परस्पर सहायता का सिद्धान्त भी पाया जाता है और यद्यपि प्रकृति भीषण संघर्ष में रत है, परन्तु फिर भी वह पालक के रूप में भी है। इसी प्रकार यदि हम आज यहां खड़े होकर यह कहें कि "जी नहीं, संपत्ति परम पवित्र है, संपत्ति से हाथ नहीं लगाया जायेगा और सम्पत्ति को छोड़ने का कोई भी प्रयत्न उन सिद्धान्तों का खंडन करेगा, जो परम्परा से अक्षुण्ण माने जाते हैं", तो मैं सभा को यह ज्ञात कराना चाहूंगा कि यह वह रूप नहीं है; जिस रूप में आप के पूर्वज इस प्रश्न पर विचार करते थे। भगवत् गीता का यह प्रसिद्ध कथन आपको स्मरण रखना चाहिये–

यज्ञ शिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्व किल्विषैः।
भुंजते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।।

गीताकार ने यह निश्चित रूप से कहा है कि संपत्ति अर्जन करने में जो लोग केवल अपनी सुविधाओं का ही विचार रखते हैं ओर जो यह भूल जाते हैं कि अन्ततः इस समस्त समाज की उत्पत्ति यज्ञ की भावना से हुई है, बलिदान की भावना से हुई है, परस्पर सहायता की भावना से हुई है, वे चोर और पापी हैं। जैसा कि आप जानते हैं, गीताकार ने यह स्पष्ट कहा है–

सह यज्ञा प्रजा सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापति।
अनेक प्रसविष्यध्वं एषवोडस्त्विष्ट-कामधुक्।।

प्रजापति ने इस अखिल ब्रह्माण्ड की रचना की.....

***अध्यक्षः** इस सभा के लिये माननीय सदस्य बहुत अधिक दार्शनिक हो गये हैं। वे अपने भाषण को संकल्प तक ही सीमित रखें।

***श्री कला वेंकटा रावः** संस्कृत से इतना परिचित होने के कारण मुझे आशा है कि वे संस्कृत भाषा का राष्ट्रीय भाषा के रूप में समर्थन करेंगे।

***पं. बालकृष्ण शर्माः** इस बात को जानते हुए कि माननीय सदस्य संस्कृत के पंडित हैं, इस गौरव को मैं उनके लिये छोड़ता हूं। श्रीमान, जैसा कि मैंने कहा था, इस सब के पीछे यह विचार है कि समस्त समाज की उत्पत्ति बलिदान की भावना से हुई है और इस कारण कोई भी व्यक्ति, चाहे वह जमींदार हो या पूंजीवादी, यदि यहां सभा में खड़ा होकर यह कहता है कि उसके अधिकारों का रक्षण होना चाहिये, उनको संरक्षित रखना चाहिये, तो मैं समझता हूं कि वह अपनी ही परम्परा के प्रति, अतीत की अपनी ही भावनाओं के प्रति सच्चा नहीं है, जो उसे अन्धकारमय युग में सहारा देती रही है और इस कारण अपने जमींदार मित्रों से मैं यह कहूंगा कि इस तुच्छ रूप में इस प्रश्न की ओर न देखिये।

राज्य के रूप में, राजनैतिक पक्ष के रूप में हमारे ऊपर बड़ा उत्तरदायित्व है। यदि हम कुछ सम्पत्तियों के अर्जन को न्याय्य बना दें और कुछ अन्य प्रकार की सम्पत्तियों को अन्याय्य बना दें, तो हम अपने ऊपर यह आक्रमण होने देंगे कि हम यहां निश्चित रूप में समाज के एक वर्ग को—समाज के पूंजीवादी वर्ग को—सुविधा दे रहे हैं। क्या खंड (2) का यह अर्थ है कि हम पूंजीवादियों के लिये न्यायालय जाने का दरवाजा खुला रख रहे हैं और उनको यह दावा करने दे रहे हैं। कि जिस सिद्धान्त के आधार पर प्रतिकर निश्चित किया गया है, वह कपटयुक्त है अथवा जो प्रतिकर दिया गया है, वह पर्याप्त अथवा उचित नहीं है? क्या खंड (2) का यही अर्थ है? श्रीमान, यदि यही अर्थ है, तब तो मैं निवेदन करता हूं कि यदि हमारे विरोधी आकर यह कहें कि हम पूंजीवादियों के पिछलग्गू होकर कार्य कर रहे हैं, तो हमें आश्चर्य नहीं करना चाहिये। यदि हमारा यह आशय नहीं है, तो हमें स्पष्ट रूप में यह कह देना चाहिये कि किसी ऐसी विधि पर, जो सामाजिक प्रयोजनों के लिये संपत्ति अर्जन करने के उपबन्ध बनाती है, किसी न्यायालय में, इस आधार पर कि प्रतिकर की जो व्यवस्था की गई है, वह अपर्याप्त है या इस आधार पर कि जिन सिद्धान्तों के अनुसार प्रतिकर दिया जायेगा, वे कपटमय अथवा अनुचित हैं, कोई प्रश्न नहीं उठाया जायेगा। मैं यही निवेदन करना चाहता हूं। यदि हम यह बात स्पष्ट नहीं करते हैं, तो मैं समझता हूं कि हम उन महा भीषण परिणामों के लिये मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं, जो हमें भुगतने होंगे। इन शब्दों में मैं इस प्रस्ताव का विरोध करता हूं और माननीय प्रधान मंत्री से यह निवेदन करता हूं कि जो संशोधन पेश किया गया है, उसे वे स्वीकार करें। इस संशोधन के सहित यह प्रस्थापना सभा के समक्ष एक आदर्श प्रस्थापना होगी और इस कारण

[पं. बालकृष्ण शर्मा]

इस प्रस्थापना का अपने उच्च स्वर में समर्थन करने में मुझे कोई संकोच नहीं होगा, परन्तु जब तक कि इस बात को स्पष्ट नहीं किया जाता है, तब तक मैं इस विचार को स्वीकार नहीं कर सकता हूं कि सभा इसे स्वीकार करे।

***श्री जगन्नाथ बख्श सिंह** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, खंड (4) के अपमार्जन के लिये मैं एक संशोधन पेश करता हूं, पर आपके आदेश के अनुसार तथा इस तथ्य के कारण कि साधारण वाद-विवाद आरम्भ हो गया है, मैं विशेषकर खंड (4) पर साधारण रूप में भाषण दूंगा। मैं यह निवेदन करूंगा कि इस संशोधन के खंड (6) का मैं समान रूप से विरोधी हूं, परन्तु चूंकि मैं समझता हूं कि ऐसे कई माननीय सदस्य हैं, जो इस खंड के बारे में मुझसे अधिक जानते हैं, इसलिये मैं उनके तर्कों को मानूंगा और इस संशोधन के इस अंग पर मैं सभा में भाषण नहीं दूंगा।

श्रीमान, अब तक संपत्ति का अनिवार्य अर्जन भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 299 जिस रूप में भारतीय स्वाधीनता अधिनियम तथा अनुषांगिक आदेशों द्वारा अनुकूलित की गई है, उसके अनुसार किया जाता है। इस धारा का अभी तक संपत्ति अर्जन करने में प्रयोग नहीं किया गया है। मैं समझता हूं कि जब तक जो संपत्ति अनिवार्य रूप से अर्जित की गई है, वह 1894 के अधिनियम 1 अर्थात् भूमि अर्जन अधिनियम के अधीन की गई है। अधिकारों की न्याय्यता के मुख्य प्रश्न के सम्बन्ध में इस अधिनियम की धारा 23 में दो उपबन्ध हैं, जिनका मैं यहां वर्णन करूंगा। धारा 23 की उपधारा 1 में यह उपबन्ध है कि अर्जित भूमि का प्रतिकर निश्चित करने में सर्व प्रथम बाजार भाव पर विचार किया जायेगा। उपधारा (2) में आगे चलकर यह निर्धारित किया गया है कि "जैसा कि ऊपर उपबन्ध किया गया है, बाजार भाव के साथ-साथ अर्जन के अनिवार्य प्रकार पर विचार करते हुए न्यायालय प्रत्येक मामले में ऐसे बाजार भाव पर 15 प्रतिशत पंचाट देगा।"

इसके अतिरिक्त उसी अधिनियम की धारा 35 से संलग्न एक परन्तुक है, जो इस प्रकार है—'यदि कलक्टर और जिन का हित है, वे लोग प्रतिकर की पर्याप्तता या उसके किसी भाग के देने पर मतभेद रखते हैं, तो कलक्टर ऐसे मतभेद को न्यायालय के विनिश्चय के लिये भेजेगा।"

श्रीमान, ये उपबन्ध एक उस अधिनियम के अधीन निजी संपत्ति के अर्जन पर समुचित या कदाचित् समुचित से भी अधिक प्रतिकर देने के लिये हैं, जिस को स्मृतिज्ञों के उस निकाय ने अधिनियमित किया था, जिसको कार्यपालिका के आतंक में आया हुआ निकाय कहा जा सकता है और जिसको उस संविधान के अधीन क्रियान्वित किया गया है, जो कार्यपालिका को न्यायपालिका से उच्च मानने वाले सिद्धान्त पर आश्रित था।

क्या यह वैषम्य व्यंग्यात्मक महत्व से परिपूर्ण नहीं है कि यह संविधान, जो कि विधिवत् शासन के प्रति अपने सम्मान के लिये प्रसिद्ध है, जो प्रत्येक व्यक्ति को न्यायपालिका में जाने के अधिकार की प्रत्याभूति का दावा करता है, उस में प्रस्थापित संशोधन के खंड (4) जैसा परन्तुक है, जो व्यक्ति को एक अपने आधारभूत अधिकार में राज्य सरकार द्वारा बाधा डालने पर भी न्याय की मांग करने से रोकता है?

खंड (4) उन राज्यों के लिये दो सिद्धान्त निर्धारित करता है, जिनके विधान मंडल में इस संविधान के प्रारम्भ के समय जमींदारी उन्मूलन विधेयक लम्बित हैं। ये सिद्धान्त यह हैं। सर्वप्रथम प्रतिकर विनिश्चय करने और देने का सिद्धान्त और रीति निर्धारण करने की शक्ति राज्य सरकारों में हस्तान्तरित करना और दूसरा यह कि उपरोक्त प्रकार से निर्धारित किये गये सिद्धान्त और रीति के सम्बन्ध में न्यायालय में प्रश्न करने के क्षेत्राधिकार का अपवर्जन। श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने जिनकी वैध विषयों में सम्मतियां प्रमाण के रूप में मानी जाती हैं, आज जिस संशोधित रूप में अनुच्छेद 24 है, उसका स्पष्टीकरण किया है। इस विषय से अनभिज्ञ मुझ जैसे व्यक्ति के लिये यह संभव नहीं हो सकता है कि उन्होंने जो सम्मतियां प्रकट की हैं, उनकी उलझनों पर विचार करें, परन्तु जैसा कि मैं निवेदन कर चुका हूं, मेरा सम्बन्ध मुख्यतया खंड (4) से है। खंड (4) के सम्बन्ध में श्री अल्लादी ने कहा है कि यह विशिष्ट खंड संयुक्त प्रान्त के विधेयक के सम्बन्ध में है। उन्होंने यह तो स्वीकार कर लिया कि वे यह नहीं जानते कि उस विधेयक में जो उपबन्ध हैं, वे ठीक हैं या नहीं। श्री अल्लादी तथा अन्य विख्यात विधि पंडित और व्यक्ति मूलाधिकार समिति के सदस्य थे और संयुक्त प्रांत का विधेयक मूलाधिकार समिति के प्रतिवेदन के बहुत दिनों बाद प्रस्तुत हुआ था। मैं यह भी मानता हूं कि मसौदा-समिति के अन्य सदस्य भी उस विधेयक की उलझनों से परिचित नहीं हैं, जो संयुक्त प्रान्त के विधान मंडल में लम्बित है। अतः यदि मैं उस विधेयक को कुछ विस्तारपूर्वक लूं, जो संयुक्त प्रान्तीय विधान मंडल में लम्बित है, तो यह विषय से असंगत बात नहीं होगी। मैं निवेदन करता हूं कि इस विषय को मैं बहुत ही अधिक विस्तारपूर्वक नहीं लूंगा।

वह विधेयक एक बहुत ही बड़ा विधान है और उसमें 310 खंड हैं और यदि उपखंडों को भी शामिल किया जाये, तो संख्या 1000 तक हो जायेगी और इस विधेयक को विस्तारपूर्वक सुनने के लिये इस सभा के पास समय नहीं है। इस बात पर विचार करते हुए मैंने दो बातों पर ही बोलना निश्चय किया है और उनको भी बहुत संक्षेप में। ये दो बातें हैं, सर्वप्रथम प्रतिकर का प्रभाव और दूसरी यह कि यह स्वामियों के कितने अधिकार का हरण करता है। श्रीमान, संयुक्त प्रांत का क्षेत्रफल लगभग 6 करोड़ एकड़ है और इसका 59 प्रतिशत उन किसानों के अधिकार में है, जिनको स्थानान्तरणीय अधिकार मिलेंगे। एक प्रतिशत जमींदारों के कृष्णाधिकार में है, जिनको वह भूमि अपने जीवनयापन के लिये मिलेगी। एक प्रतिशत के हिसाब से जमींदारों के प्रत्येक कुटुम्ब के लिये यह 3.74 एकड़ के लगभग होती है और

[श्री जगन्नाथ बख्श सिंह]

सरकारी हिसाब से जमींदारों के कुटुम्ब 20 लाख हैं और हमारे हिसाब से 23 लाख हैं। यह मिलकर संयुक्त प्रान्त की भूमि के क्षेत्रफल का 60 प्रतिशत होता है। कुछ क्षेत्रफल के 59 प्रतिशत के लिये जमींदार मध्यवर्ती व्यक्तियों के रूप में समझे जाते हैं। 'मध्यवर्ती व्यक्ति' का अर्थ उस व्यक्ति के रूप में लेते हुए, जिसकी स्थिति राज्य और किसान के बीच में है, ऐसी भूमि का 49 प्रतिशत मध्यवर्ती व्यक्तियों के अधिकार में है। शेष 10 प्रतिशत भूमि अर्थात् 216 लाख एकड़ कृषि के योग्य बनाई जाने वाली ऊपर भूमि है, जिसके लिये जमींदारों ने सीधा सरकार से बंदोबस्त किया है। इस भूमि में कोई किसान नहीं है और इस कारण उसके लिये कोई मध्यवर्ती व्यक्ति नहीं है। इस समस्त क्षेत्रफल के 59 प्रतिशत पर, जिसमें कि जमींदार राज्य और किसान के बीच में मध्यवर्ती व्यक्ति है, जो प्रतिकर देना विचारा गया है, वह लगभग प्रत्येक संपदा के लाभ का अठगुना है। 5000/- रुपये भू-राजस्व से कम की आमदनी पर भिन्न प्रकार से पुनर्निवासन अनुदान देने के लिये उपबन्ध बनाये गये हैं। 5000/- रुपये से अधिक पर केवल आठगुना ही है, परन्तु उच्चकोटि में प्रतिकर लाभ का केवल तिगुना ही है। यह मैं संयुक्त प्रांत के माननीय मुख्य मंत्री के उस वक्तव्य के आधार पर कह रहा हूं, जो स्वयं उन्होंने 10 जून को लखनऊ में संवाददाताओं के सम्मेलन में दिया था। जिन लोगों को अपने लाभ का तिगुना मिलेगा, उनका प्रतिकर उनकी वार्षिक आय का 75 प्रतिशत होगा। उदाहरणार्थ कोई व्यक्ति जिसकी आय एक लाख रुपया है, उसे अपनी सब सम्पत्ति का 75000/- रुपया प्रतिकर मिलेगा। 2½ प्रतिशत वार्षिक दर से ब्याज का हिसाब लगाने से इसका अर्थ यह हुआ कि अब इस समय की एक लाख की आय के स्थान में उसे 1875/- रुपये की आय होगी। संयुक्त प्रान्त के क्षेत्रफल के 49 प्रतिशत भूमि अर्जन करने के प्रतिकर के सम्बन्ध में यह स्थिति है।

शेष 40 प्रतिशत भूमि, जिसके सम्बन्ध में मैं यह कह चुका हूं कि जमींदार मध्यवर्ती व्यक्ति नहीं हैं, उसको सरकार बिना किसी प्रतिकर के अर्जित कर रही है। यह उस दो करोड़ एकड़ भूमि के बारे में है, जिस में चरागाह, विविध प्रकार के वृक्ष, जंगल, वन, तालाब, कुंए तथा सुधार और उन्नति की अन्य वस्तुएं तथा ऊसर क्षेत्र और ऐसे उर्वरा क्षेत्र भी हैं, जिनका राजस्व अन्य जोती हुई भूमि से कम नहीं है। यह सब भूमि बिना किसी प्रतिकर के अर्जित की जा रही है और इस बात पर ध्यान दीजिये कि इस अधिकार के हरण करने से छोटे जमींदारों को बड़े जमींदारों से अधिक हानि होगी। सभा के समक्ष में एक खास बात रखूंगा।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): क्या मैं यह जान सकता हूं कि उस भूमि से कुछ भू-राजस्व प्राप्त होता है या नहीं?

***श्री जगन्नाथ बख्श सिंह:** उस भूमि पर उसी प्रकार से भू-राजस्व दिया जाता है, जैसे कि जोती हुई भूमि पर। जिन जमींदारों ने इस भूमि को खरीदा है, उन्होंने उसकी कीमत दी है और इन क्षेत्रों से उन्हें जो आय होती है, उसको भू-राजस्व में निर्धारण करने के अतिरिक्त उस पर आयकर भी लगाया जाता है, जिससे उस भूमि के मूल्य में कोई संदेह नहीं रह जाता है।

***अध्यक्ष:** माननीय सदस्य से मैं यह निवेदन करूंगा कि वे इस विशेष विधेयक को अधिक विस्तारपूर्वक न लें।

***श्री जगन्नाथ बख्श सिंह:** मैं और अधिक विस्तारपूर्वक उसे नहीं लूंगा। श्रीमान, यह प्रश्न कदाचित् उसके विस्तार से सम्बन्ध नहीं रखता है और न किसी विशेष प्रान्त से ही सम्बन्ध रखता है, जब कि मैं यह कहता हूं कि जमींदारी का अर्जन कांग्रेस की सरकार और किसानों के बीच में से मध्यवर्ती व्यक्तियों को हटाने के वचन के पालन करने के रूप में क्रियान्वित किया जा रहा है। यह वचन सन् 1945-46 के कांग्रेस के निर्वाचन सम्बन्धी घोषणापत्र में था और इस को कई बार विधान मंडलों में तथा विधान मंडलों से बाहर दुहराया गया है। उस संकल्प को पढ़कर सुनाने में मैं सभा का समय नहीं लेना चाहता हूं। पर सभा की सूचनार्थ यहां मैं यह निवेदन करूंगा कि इस वचन का पालन करने के विचार से संयुक्त प्रांतीय विधान-सभा ने 8 अगस्त 1946 को एक संकल्प पारित किया था। इस संकल्प में यह कहा गया है:

> "यह सभा इस प्रान्त में से जमींदारी प्रथा मिटाने के सिद्धान्त को स्वीकार करती है, जिसमें कृषक और राज्य के बीच में मध्यवर्ती व्यक्ति होते हैं और यह संकल्प करती है कि इन मध्यवर्ती व्यक्तियों के अधिकारों को उचित प्रतिकर देकर अर्जित किया जाये।"
>
> *(इन शब्दों पर ध्यान दिया जा सकता है।)*
>
> "और इस प्रयोजन के लिये योजना तैयार करने को सरकार एक समिति नियुक्त करे।"

इस प्रस्ताव को माननीय राजस्व मंत्री ने पेश किया था और संयुक्त प्रान्त के माननीय मुख्य मंत्री ने एक लम्बे भाषण द्वारा इसका समर्थन किया था। अपने भाषण में उन्होंने कहा था। *(भाषण उन्होंने हिन्दुस्तानी में दिया था।)* "हमारा फर्ज है कि हम जमींदारों के साथ इन्साफ करें।" उनके शब्दों से और इस संकल्प के अर्थ से हम बहुत प्रफुल्लित हुए थे। इस पर मैं कोई आलोचना नहीं करूंगा। सभा के निर्णय पर ही मैं इस बात को छोड़ दूंगा कि प्रतिकर और अधिकार हरण करने

[श्री जगन्नाथ बख्श सिंह]

की जिन शस्त्रों को मैंने बहुत ही संक्षेप में बताया है, वे इस तथ्य को सिद्ध करती हैं कि जैसा सरकार ने कहा था कि इंसाफ करना उसका फर्ज है, उसके अनुसार संयुक्त प्रान्त के जमींदारों को उचित प्रतिकर मिल रहा है या नहीं। ये ऐसे प्रश्न हैं, जिन पर मुझे कुछ भी नहीं कहना चाहिये। सभा इन पर निर्णय करे।

अन्त में मैं केवल यही कहूंगा कि निजी संपत्ति के विषय में न्याय्य अधिकारों का मामला अभेद्य है। जमींदारों को प्रतिकर देने के विरुद्ध निधि की कमी कोई तर्कपूर्ण बात नहीं है, जब कि राज्य सरकार को अर्जित भूमि के स्थानान्तरणीय अधिकारों को किसानों में बेचने से 45 करोड़ रुपये की कोरी बचत है। निजी संपत्ति के सब प्रकारों के साथ समान बर्ताव करना एक ऐसा सिद्धान्त है, जिसके प्रति यह सभा लक्ष्य संबंधी संकल्प में की गई घोषणा और पारित अनुच्छेद 15 के उपबन्धों द्वारा वचनबद्ध है। श्रीमान, क्या मैं यह कह सकता हूं कि इस सभा की पूर्व प्रतिज्ञाओं के विपरीत होने के अतिरिक्त, यदि इस संशोधन को स्वीकार कर लिया जाता है, तो वह उस संपत्ति संबंधी मूलाधिकार पर अनुदाहरणीय आक्रमण के रूप में होगा, जिसको पवित्र समझा गया है और संसार के लगभग प्रत्येक महत्वपूर्ण संविधान ने जिसकी प्रत्याभूति की है। अतः इस संशोधन में खण्ड (4) का तथा खंड (6) का भी अपमार्जन करना और न्याय्य बाद हेतु के रूप में उचित तथा ठीक प्रतिकर देने के लिये उपबन्ध करना एक नैतिक आभार है। श्रीमान, न्याय न केवल करना ही चाहिये और न करने के लिये कहना ही चाहिये, वरन् ऐसा प्रतीत होना चाहिये कि न्याय किया जा रहा है। उपखंड (4) और (6) के अपमार्जन का मैं जोरदार समर्थन करता हूं।

***माननीय श्री गोविन्द बल्लभ पन्त** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान, जब से प्रधान मंत्री ने इस अनुच्छेद को सभा के समक्ष रखा है, तब से कई संशोधन पेश हो चुके हैं। कई कारणों वश इस अनुच्छेद पर आक्रमण किया गया है। बहुत से संशोधन परस्पर एक दूसरे के विरोधी हैं और पूर्णतया विपरीत हैं। कुछ वक्ता इस कारण इस खंड से संतुष्ट नहीं हैं कि इसमें बहुत अधिक दिया गया है और कुछ यह सोचते हैं कि इसके अधीन जो प्रतिकर ग्राह्य है, वह भ्रमात्मक है और शायद उससे उन्हें संतोष न हो।

मैं समझता हूं कि श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर द्वारा स्पष्ट व्यक्त कर देने पर तथा पेश करते समय प्रधान मंत्री के गंभीर भाषण देने पर भी अभी कुछ भ्रम है। मेरे प्रान्त के जमींदार दल के नेता राजा जगन्नाथ बख्श सिंह, जो उस संयुक्त प्रवर समिति के भी सदस्य हैं, जो इस विधेयक पर विचार कर रही है, यह चाहते हैं कि जमींदारी का प्रतिकर भूमि अर्जन अधिनियम में निर्धारित सिद्धान्तों के अनुसार दिया जाना चाहिये, अर्थात् यह कि जमींदारी को बाज़ार-दर में 15 प्रतिशत और मिलाकर मिलना चाहिये। उनकी बात सुनने के पश्चात् तो मुझे ऐसा लगता

है कि यदि हम खंड (4) को पुनःस्थापित नहीं करते, तो एक बड़ी भारी भूल होती। रूढ़िगत स्वार्थों का कठिनाई से नाश होता है। परन्तु कभी-कभी वे किसी विषय में उदार विचार रखना तो दूर रहा, समझदारी तक के विचार रखने में असमर्थ हो जाते हैं।

उन्होंने उस विधेयक की आलोचना की है, जिसको संयुक्त प्रान्तीय विधान मंडल में प्रस्तुत करने का मुझे सौभाग्य मिला था। उस विधेयक को लेने के पूर्व, चूंकि उन्होंने भारत शासन अधिनियम, 1935 का उल्लेख किया और यह कहा कि पहले धारा 299 को कभी लागू नहीं किया गया, मैं इस संबंध में कुछ बातें कहना चाहूंगा। यदि अब भी वे कुछ समझने की प्रवृत्ति रखते हैं, जिसके बारे में मुझे संदेह है, तो जो कुछ मैं कहना चाहता हूं, उससे उनकी कुछ धारणायें मिट जायेंगी। संयुक्त प्रवर समिति को इस प्रश्न पर विचार करने का अवसर मिला था और उसमें जो कुछ कहा गया था, उससे उनको संतोष हो जाना चाहिये। इस समिति में इस प्रश्न पर विचार किया गया था और जो महत्वपूर्ण सामान्य सिद्धान्त है, उसे स्वीकार किया गया था। वैयक्तिक संपत्ति का किसी विशिष्ट तथा सीमित प्रयोजन के लिये अर्जन किया जा सकता है। सामाजिक व्यवस्था के पुनर्निर्माण के लिये संपत्ति के किसी वर्ग का साधारण अर्जन हो सकता है। इसके सिद्धान्तों का विनिश्चय प्रयोजन, परिस्थितियां तथा अन्य मुख्य तथा संगत बातों के आधार पर, जिनका इन वाद-हेतुओं से संबंध है, किया जायेगा। जब कि किसी संपत्ति का अर्जन डाकखाने, रेलवे स्टेशन या कोठार-घर के लिये किया जायेगा, तो उसके लिये भूमि अर्जन अधिनियम के अनुसार धन दिया जायेगा, जिसमें एक निश्चित तथा ठीक परिमाण विनिहित है; वह यह कि बाजार-दर के हिसाब से धन दिया जायेगा। परन्तु जब कि संपत्ति का अर्जन किसी ऐसे विशिष्ट प्रयोजन के लिये नहीं किया जाता है, वरन् जब कि आप बहुत से लोगों की संपत्ति संकुचित रूप में किसी उत्पादन के प्रयोजन के लिये नहीं, बल्कि लोक-कल्याण की उन्नति हेतु अर्जित करते हैं, तो उस प्रयोजन तथा उस अवसर का उचित विचार रखते हुए सिद्धान्त बनाये जायेंगे, जिसके लिये ऐसा कदम उठाना पड़ा है।

कुछ मित्रों ने निजी संपत्ति के उस अधिकार का उल्लेख किया है, जिसका इस विधेयक में उपबन्ध किया गया है। उनको मैं उस लक्ष्यमूलक संकल्प की याद दिलाऊंगा, जिसको हमने प्रथम दिन पारित किया था। उनको मैं इस विधेयक की प्रस्तावना की भी याद दिलाऊंगा। कभी-कभी हम यह भूल जाते हैं कि मूलभूत तथा मुख्य सिद्धान्त क्या है—जोकि उस विधान की आत्मा है, जिसका हम उपक्रम कर रहे हैं और उस संविधान का प्राण है, जिसका हम निर्माण कर रहे हैं। प्रस्तावना में हम यह कहते हैं:-

"हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिये, तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक

[माननीय श्री गोविन्द बल्लभ पन्त]

न्याय, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिये तथा उन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिये.....।"

मैं निवेदन करता हूं कि जमींदारी प्रथा का उन्मूलन और भू-सुधार विधेयक, जिसको हमने अपने विधान मंडल में पुर:स्थापित किया है, वह हमारे गणराज्य के समाज संबंधी उद्देश्यों की उन्नति के लिये है। अत: जब हम उसके उपबन्धों की जांच करें, तो हमें उस सर्वोच्च लक्ष्य को ध्यान में रखना चाहिये, जिसको हमारे राज्य ने प्रस्तुत किया है और जिसकी स्वयं राज्य ने व्याख्या की है। माननीय प्रधान मंत्री ने जो कुछ कहा था, मैं उसके एक-एक शब्द का समर्थन करता हूं और मैं फिर कहता हूं कि जमींदारों से हमारा कोई विरोध नहीं है, मैं तो उनसे मैत्री रखना चाहता हूं और प्रत्येक का मित्र होना चाहता हूं। मैं यह समझता हूं कि हम अपने उत्तरदायित्वों का पूर्णरूप से निर्वहन नहीं करेंगे, यदि हम जान बूझ कर किसी विशिष्ट वर्ग को हानि पहुंचाना चाहें। अत: मैं उचित प्रतिकर का समर्थक हूं, प्रत्येक व्यक्ति के लिये उचित प्रतिकर हो—पर वह उचित प्रतिकर क्या है? प्रश्न तो यही है। न्याय की परिभाषा किसी परिमाण के रूप में नहीं की जा सकती है। जब हम एक वृहद रूप में सामाजिक सुधार पुर:स्थापित करते हैं, तो उन निबन्धनों के अनुसार प्रतिकर की व्यवस्था करना बहुत ही अनुचित होगा, जिनकी राज्य पूर्ति नहीं कर सकता, जिनका सम्भवतया पालन नहीं किया जा सकता और जिनसे या तो राज्य का तंत्र छिन्न-भिन्न हो जायेगा, या जिनके बोझ से राज्य दब जायेगा। इन दोनों बातों से हमें रक्षा करनी है। राज्य की सामर्थ्य सीमित है। अब हम लोक-कल्याण के लिये कोई उपक्रम कर रहे हैं, तो प्रत्येक वर्ग के साथ न्यायोचित व्यवहार करने के साथ-साथ हमें मुख्य प्रयोजन का सदैव ध्यान रखना चाहिये और वह मुख्य प्रयोजन समस्त राज्य का कल्याण और समस्त सम्प्रदाय का कल्याण है। किसी वर्ग को, किसी भी हित को इस मार्ग में आड़े नहीं आने दिया जायेगा, और यदि कोई आड़े आयेगा, तो उसे कुचल दिया जायेगा, वह छिन्न-भिन्न हो जायेगा, टिक नहीं सकता।

अत: जब कि मुझसे यह कहा जाता है कि मैंने न्याय करने के लिये कहा था, तो मैं कहता हूं कि मैंने न्याय किया है और संयुक्त प्रान्तीय जमींदारी उन्मूलन विधेयक की जांच करने के लिये मैं उसे किसी भी मध्यस्थ मंडली के समक्ष प्रस्तुत करने के लिये तैयार हूं और वह मंडली उसमें उपबन्धित प्रतिकर के रूप पर अपने विचार प्रकट कर सकती है। यदि कोई व्यक्ति, जोकि उत्तरदायित्वपूर्ण है और जो इन बातों में दूर तक जा सकता है और जो सदैव उस सर्वोच्च प्रयोजन को अपने ध्यान में रख सकता है, जिसका हमारा राज्य समर्थक है, वह प्रसन्नता से इस कार्य को करने का कष्ट करे और मुझे विश्वास है—और इस आशा में

मैं स्वयं अपनी प्रशंसा करने के लिये तैयार हूं कि जो कुछ हमने किया है, उस के लिये वह मुझे बधाई देगा और मैं यह दावा करती हूं कि जिन लोगों ने सावधानी पूर्वक इस विधेयक की जांच की है, वे लगभग इसी परिणाम पर पहुंचे हैं और मेरे ही प्रान्त में बहुत से लोग यह सोचते हैं कि हमने बहुत उदारता की है।

आखिर वह प्रतिकर क्या है, जिसका हमने उपबन्ध किया है। हमारे यहां लगभग 20 लाख जमींदार हैं। 19 लाख से अधिक को हमने उनकी शुद्ध वार्षिक आय का 28 गुना प्रतिकर के रूप में उपबन्ध किया है। क्या कोई व्यक्ति यह कह सकता है कि यह अपर्याप्त है? आप यह देखें कि कोई भी व्यक्ति, जो 5,000/- रुपये या इससे कम राजस्व में देता है, तो उसे शुद्ध वार्षिक आय का 10 गुने से कम प्रतिकर नहीं मिलेगा। क्या यह अनुचित है, क्या यह अपर्याप्त है कि चाहे कोई व्यक्ति कितना ही अधिक राजस्व देता हो, उसे शुद्ध आय के अठगुने से कम नहीं मिलेगा। जो लोग जमींदारी के इतिहास से परिचित हैं, वे जानते होंगे कि जब अंग्रेजों ने सर्वप्रथम इस पद्धति का पुर:स्थापन किया था, तो जमींदारों को जो कुछ वे एकत्रित करते थे, उसका केवल दस प्रतिशत ही रखने दिया जाता था और कुछ लोग तो ऐसे थे, जिनसे जितना वे एकत्रित करते थे, उससे भी अधिक देने के लिये कहा जाता था। अत: आज जो कुछ जमींदार दे रहे है या अपने पास रख रहे हैं, वह कानून द्वारा बनाया गया है। प्राचीन काल में उनकी ऐसी कोई प्रतिष्ठा नहीं थी। अंग्रेजी सरकार ने प्रारम्भ में शुद्ध उगाही का उनको केवल 10 प्रतिशत दिया। मैं उनको 20 प्रतिशत देने को तैयार हूं और उन को बाजार-दर से प्रतिकर दूंगा और इससे उन्हें संतोष हो जाना चाहिये। आखिर प्रतिकर के बारे में ये परम्परागत धारणायें क्या हैं? क्या उन पर हमने कभी गंभीर विचार करने का प्रयत्न किया है? यदि आप बाजार-दर भी लें, तो भी प्रतिकर किस बात पर निर्भर है? बाज़ार-दर न्यूनाधिक रूप से राज्य द्वारा बनती है, यदि आप अपनी मुद्रा का मूल्य कल ही गिरा दीजिये, तो बाजार-दर गिर जायेगा और इसके विपरीत परिस्थितियों में दर सौगुना बढ़ जायेगा। चूंकि हमने इस विधान को जमींदारी उन्मूलन करने के लिया था, जमींदारियों का बाजार दर बहुत कुछ गिर गया और जमींदारों को ग्राहक तक नहीं मिलते और फिर मुझे यह अधिकार है, सरकार को यह अधिकार है कि समस्त आय के 95 प्रतिशत तक भू-राजस्व लगा दें या रुपये में 15 आने तक कृषि आय कर लगा दें; किसी राज्य को ऐसा करने से कोई नहीं रोक सकता है। अत: न्यायोचित प्रतिकर क्या है, इसकी आप किस प्रकार परिभाषा करेंगे; आप यह कैसे परिभाषित कर सकते हैं कि इन परिस्थितियों में युक्ति युक्त क्या है? यह एक ऐसा विषय है, जिस पर इन सब संगत बातों पर विचार करते हुए विनिश्चित किया जा सकता है। अत: इस आश्चर्यजनक तथा प्रिय पद 'न्याय्य' की हम बहुत अधिक दुहाई न दें, जिसका प्रभाव आज मेरे बहुत से मित्रों पर छाया हुआ है।

[माननीय श्री गोविन्द बल्लभ पंत]

और यदि आप न्याय्यता की दृष्टि से भी इसकी ओर देखें तो भी मैं आपसे कहूंगा कि जहां तक मेरे विधेयक की पहुंच है, वह जमींदारों को व्यवहार न्यायालय में जाने का हक देता है। प्रतिकर पदाधिकारी द्वारा उनको दी जाने वाली रकम को इस विधेयक के अनुसार यदि वे न्याययुक्त नहीं समझते हैं, तो वह व्यवहार न्यायालय में जा सकते हैं, वे उच्च न्यायालय में अपील कर सकते हैं, अतः न्यायालय को अलग नहीं किया गया है। न्यायालयों के क्षेत्राधिकार को हमने मिटाया नहीं है। जो कुछ हम चाहे हैं, वह यह है। न्याय करने के लिये हमारे भरसक प्रयत्न करने पर भी ऐसी धारणायें हैं, जो तर्क पर आश्रित नहीं हैं, वरन् शायद ईर्ष्या या अज्ञानता से परिपूर्ण स्वार्थ पर आश्रित हैं कि जो कुछ व्यवस्था की गई है, वह अपर्याप्त तथा तुच्छ है; अतः खंड (4) जैसा खंड रखना आवश्यक है, क्योंकि में जानता हूं कि हमारे जमींदारों और ताल्लुकेदारों में अब भी मुकदमेबाजी की लगन है। पुराने जमाने में वे सांड़ों या कबूतरों की लड़ाई में मग्न रहते थे। वे दिन हवा हो गये। पर उन्हें तो कहीं लड़ना ही है और वह लड़ाई अब न्यायालयों में होती है।

पर जब हम इतनी महान् समस्या को सुलझाने में लगे हुए हैं, जिसका प्रभाव केवल हजार दो हजार व्यक्तियों पर ही नहीं पड़ेगा, वरन् वास्तव में करोड़ों व्यक्तियों पर पड़ेगा, तो हम ऐसे ऐश्वर्य में नहीं पड़ सकते हैं। परिणाम चाहे कितना ही निष्फल क्यों न हो, पर इसके करने में जो कुछ तनाव है, उससे हमें बचना चाहिये। और फिर हम तो इससे भी आगे बढ़ गये हैं। हमने केवल पर्याप्त प्रतिकर ही देना निश्चित नहीं किया है, परन्तु इसके साथ-साथ प्रतिकर को समूचे रूप में या उसके किसी अंश को नकद देने के लिये हम किसानों से एक बड़ी राशि एकत्रित करने का महान प्रयत्न करने वाले हैं। मैं आशा करता हूं कि हम कोई ऐसी रीति खोज निकालेंगे, जिसे के द्वारा यदि हम धन संग्रह करने में सफल हुए, तो उस धन का उत्पादन संबंधी प्रयोजन के लिये प्रयोग किया जायेगा। धन संग्रह करने का हम प्रयत्न कर रहे हैं। कुछ महीनों में हमने 150 करोड़ रुपया एकत्रित करना निश्चित किया है। हमारा यह विचार है। क्या इससे यह संकेत नहीं मिलता कि हमारी इच्छा केवल यही नहीं है कि हम न्याय करें, वरन् यह भी है कि इस समस्या को सदैव के लिये सुलझा दें, जिससे कि भविष्य में इस पर कोई विवाद खड़ा न हो। जहां तक जमींदारी उन्मूलन का प्रश्न है, यदि इस विधि में कोई सामान्य उपबन्ध न भी होता, तो भी मैं सभा से एक विशिष्ट उपबन्ध बनाने के लिये कहता, जिससे कि बाद में कोई कठिनाई न हो। मैं यह मानता हूं कि हमें प्रत्येक व्यक्ति को न्यायोचित प्रतिकर देना पड़ेगा।

पर किसी भी मामले में हम यह नहीं चाहते कि मुकदमेबाजी में हम फसें और मेरा यह विचार है कि यदि किसी समय यह विधान मंडल चाहे कि उद्योग का राष्ट्रीयकरण हो और उस पर नियंत्रण हो, चाहे वह सब उद्योगों के संबंध में

हो या वस्त्र अथवा खनिज पदार्थों संबंधी उद्योग के लिये हो, उसको यह अधिकार होगा कि इस प्रयोजन के लिये सिद्धान्त बनाये और विधि पारित करे और वे सिद्धान्त किसी भी न्यायालय में अकाट्य होंगे। उन पर प्रश्न नहीं किया जायेगा, क्योंकि उन पर आपत्ति करने की केवल यही शर्त है कि वह संविधान के विरुद्ध हो, जैसा कि श्री अल्लादी ने कहा है, जो कि इस देश में पैदा हुए महान स्मृतिज्ञों में से हैं। कोई भी विधानमंडल इस अधोगति को प्राप्त नहीं हो सकता है कि वह संविधान का विरोध करे। विधानमंडल संविधान के संधारण और उसकी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिये हैं। अतः ऐसी शंकायें हमें नहीं रखनी चाहियें।

मैं नहीं समझ पाता हूं कि किसी भी क्षेत्र में किसी प्रकार का संदेह क्यों होना चाहिये। कुछ मित्र सोचते हैं कि यह खंड समाजीकरण में बाधा डालेगा। मैं नहीं समझता हूं कि इसका क्या आशय है। परन्तु सेठ दामोदर स्वरूप ने, जो मैं समझता हूं समाजवादी पक्ष के माने हुए प्रतिनिधि हैं, स्वयं यह कहा है कि विधि के अलावा अन्य किसी प्रकार से अर्जन नहीं होना चाहिये और यह भी कहा कि प्रतिकर दिया जाना चाहिये। इस बात को समाजवादियों तक ने माना है। पर यह स्पष्ट है कि उस प्रयोजन का विचार करते हुए, जिसके लिये संपत्ति अर्जित की जाती है और उन परिस्थितियों का ध्यान रखते हुए जिनके अन्तर्गत संपत्ति अर्जित की जाती है, राज्य केवल उतना ही प्रतिकर दे सकता है, जितना न्यायोचित समझा जायेगा।

अतः जिन लोगों ने विरोधी संशोधन पेश किये हैं, मैं उनसे यह निवेदन करता हूं कि शंका के लिये कोई कारण नहीं है। जब हम समाजीकरण करेंगे, उस समय हम कुछ सिद्धान्तों की परिभाषा तथा व्याख्या करेंगे और आप स्वयं यह चाहते हैं कि वे सिद्धान्त संविधान के विरोध में न हों; अतः कोई कठिनाई क्योंकर हो? आप ऐसा क्यों सोचते हैं कि यह खंड आड़े आयेगा? आज हमारी कठिनाई यह है कि हम उत्पादन चाहते हैं, अधिकाधिक उत्पादन चाहते हैं और इस समय की यथार्थता की पूर्ण उपेक्षा करते हुए हमें अपने आपको काल्पनिक शंकाओं से भयग्रस्त नहीं होना चाहिये। कुछ मित्रों ने यहां धन लगाने वालों का पुनः विश्वास प्राप्त करने के बारे में कहा है। मैं नहीं जानता हूं कि हमने उसे क्योंकर खो दिया है? यदि धन लगाने वाले धन नहीं लगाना चाहते, तो वह इस कारण नहीं है कि उन्हें आश्वासन दिलाने का भरसक प्रयत्न करने में सरकार असफल रही है। परन्तु यदि इन आश्वासनों के देने पर भी धन नहीं लगाया जाता है, तो मैं सभा को यह भी याद दिलाऊंगा कि अनुच्छेद 24 के उपबंध भारत शासन अधिनियम की धारा 299 से बहुत अधिक व्यापक है। जब तक भारत शासन अधिनियम की धारा 299 रही, तब तक उनको कोई शंका न थी। भारत शासन अधिनियम केवल संपत्ति के अनिवार्य अर्जन के संबंध का था और हमारा अनुच्छेद 24 केवल संपत्ति के अनिवार्य अर्जन के ही संबंध में नहीं है, वरन्

[माननीय श्री गोविन्द बल्लभ पंत]

लोक प्रयोजन के लिये संपत्ति पर अपना कब्जा करने के लिये भी है। अतः यह अधिक व्यापक है।

भारत शासन अधिनियम की धारा 299 जिस समय प्रवृत थी, उस समय जब उनको कोई शंका न थी, तो मुझे कोई भी ऐसा कारण नहीं दिखाई देता कि हमारे नये संविधान के इस 24 अनुच्छेद के कारण उनको क्यों शंका, अशान्ति या अविश्वास हो। इसमें उनको और भी अधिक आश्वासन दिया गया है और किसी अन्य बात के अतिरिक्त मैं यह कहता हूं कि कांग्रेस अपने अहिंसा धर्म के सहित न्यायोचित प्रतिकर के पक्ष में है। पर उस न्यायोचित्य का निर्णय विधानमंडल द्वारा होगा, न कि न्यायालय द्वारा, क्योंकि केवल विधानमंडल ही उन बातों का जिनका ऐसे पेचीदे मामलों से संबंध है व्यापक रूप से विचार करने में समर्थ है। ऐसी कोई न्याय्य सामग्री नहीं है जिसको इन बातों पर विनिश्चय प्राप्त करने के लिये किसी न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाये। इन परिस्थितियों में संभवतः अन्य कोई और मंच नहीं हो सकता है। कभी-कभी हमें केवल घरेलू परिस्थितियों पर ही नहीं वरन् अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों पर भी विचार करना पड़ता है। उदाहरण के रूप में चीन में जो कुछ हुआ, उसकी हम उस समय उपेक्षा नहीं कर सकते, जब कि हम अपने देश में जमींदारी उन्मूलन करने के प्रश्न पर विचार कर रहे हैं। बर्मा में जो कुछ हो रहा है, उसकी हम उपेक्षा नहीं कर सकते हैं। पर किसी भी न्यायालय से यह नहीं कहा जा सकता कि वह बर्मा जाये, वहां जांच करे और प्रतिवेदन प्रस्तुत करे। इस प्रयोजन के लिये कोई आयोग नियुक्त नहीं हो सकता। अतः हमें विधान मंडल में विश्वास करना पड़ा और यदि हमें स्वयं अपने ही में विश्वास नहीं है, तो मैं कहता हूं कि हमें अन्यत्र कहीं संतोष नहीं मिल सकता। इस कारण सभा से मेरा निवेदन यह है कि इस अनुच्छेद को उसके ठीक तथा पूर्ण अर्थ के सहित लें, उसके व्यापक क्षेत्र को समझें तथा उसकी परिसीमाओं को भी समझें और यह याद रखें कि जो कुछ हम करते हैं, वह उस उद्देश्य के अनुसार है, जिसको हमने अपने सामने रखा है।

***श्री विश्वनाथ दासः** श्रीमान, हमारे आज के वाद-विवाद में बड़े महत्वपूर्ण सिद्धान्त, जैसे कि निजी संपत्ति की उपादेयता, रक्षण और परिरक्षण, पर्याप्त प्रतिकर, संविधानिक परिमाण तथा अन्य ऐसी ही बातें प्रस्तुत की गई हैं। मुझे तो यह प्रश्न बहुत ही सरल दिखाई देता है और मैं अपने माननीय मित्रों से निवेदन करूंगा कि वे इस विषय के उस रूप पर विशेष ध्यान दें, जिसका हमारे वाद-विवाद से सीधा संबंध है।

स्थिति यह है। इस संविधान से संलग्न राज्य अनुसूची के नाम से ज्ञात सप्तम अनुसूची की सूची 2 हम स्वीकार कर ही चुके हैं। उसके अन्तर्गत राज्यों की हमने, जब कभी अपेक्षित हो, अनिवार्य अर्जन करने के लिये उपक्रम करने की

शक्ति सौंप दी है। मद संख्या 9 भूमि के रूप में संपत्ति अर्जन करने के विषय में है। इस समय विवादान्तर्गत अनुच्छेद 24 के अधीन उपबन्धों में इस शक्ति को निर्बन्धित करने का प्रयास किया जा रहा है। अतः प्रश्न केवल यह है कि प्रान्तों को, जो कि नये संविधान में राज्य कहे जाते हैं, जो शक्तियां आपने दी हैं, उन को क्या आप पलटना, विशेषित करना या उसमें रूपभेद करना चाहते हैं या इस संविधान से लग्न अनुसूची 7 के अधीन उन प्रान्तों या राज्यों को जो प्रकार्य तथा जो शक्तियां सौंपी गई हैं, उनको आप प्रयोग करने देना चाहते हैं।

इस संबंध में मैं माननीय सदस्यों का ध्यान मद संख्या 9 की ओर आकर्षित करूंगा, जिसमें प्रतिकर के सिद्धान्त को मान लिया है और स्वीकार कर लिया है। दो प्रश्न अपने आप पैदा होते हैं। प्रथम प्रश्न यह है कि अनिवार्य अर्जन पर राज्य प्रतिकर दे या न दे। इसका उत्तर अनुसूची के मद संख्या 9 में है। यहां हम उन लोगों से भिन्न मत रखते हैं, जिनकी यह धारणा है कि प्रतिकर न दिया जाये। इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लेने से हम लज्जित नहीं हैं कि राज्य द्वारा अनिवार्यतः अर्जित की गई संपत्ति का प्रतिकर दिया जायेगा।

श्रीमान, इस स्थिति को ग्रहण कर लेने के पश्चात् अन्य बात जो आवश्यक तथा प्रमुख है, वह यह है कि क्या प्रान्त की कार्यपालिका विधानमंडल से कोई शक्ति प्राप्त किये बिना स्वयं अर्जन कार्य कर सकती है। इसका उत्तर अनुच्छेद 24 का खंड (1) है। बिहार के अपने माननीय मित्र से मैं पूर्णतया सहमत हूं, जिन्होंने इस बात के समर्थन करने का पूरा प्रयत्न किया कि शेष अनुच्छेद अनावश्यक हैं। माननीय पंडित जवाहरलाल नेहरू के लिये बहुत आदर और सम्मान होते हुए भी मुझे यह स्पष्ट स्वीकार करना पड़ेगा कि इसको मूलाधिकार कहना और राज्यों को इस सभा के मत द्वारा जो शक्तियां दी जा चुकी हैं, उन पर प्रतिबन्ध के रूप में इसे प्रस्तुत करना मेरे मनोविचारों के बिल्कुल विरुद्ध है। आप चुपड़ी और दो-दो नहीं ले सकते हैं। संविधान के कुछ पहलुओं पर विधान बनाने की शक्ति इस संविधान के अधीन आप राज्यों को दे चुके हैं। अब यहां खड़े होकर यह कहने में क्या न्याय और क्या युक्ति है–"शाबाश, मेरे नेक बच्चो, मैंने आपको शक्ति तो दे दी है, पर रूढ़िगत स्वार्थों के लिये परित्राण हैं।" मुझे तो निबन्धों में यह परस्पर विरोध दिखाई देता है। मैं यह स्पष्ट स्वीकार करूंगा और अपने विरोध को प्रकट करूंगा कि आपने पहले ही राज्य और राज्य विधान मंडल के साथ कम उदार होकर व्यवहार किया है। आपने प्रान्तों को स्वायत्तता तो दी, पर जिस स्वायत्तता देने का आपने डंका पीटा, उसी स्वायत्तता को आपने मेंट दिया। 1935 के अधिनियम के अधीन राज्य, को जो स्वायत्तता प्राप्त थी, वह भी सब उससे छिन गई। उदाहरण के रूप में कर उदग्रहण करने, कर वसूल करने और राष्ट्रपति द्वारा विनिश्चित सिद्धान्त के अनुसार उसका वितरण करने की शक्ति की व्यवस्था तो आपने संविधान में की है। पर कर उदग्रहण करने का उत्तरदायित्व

[श्री विश्वनाथ दास]

जो राज्य के विधान मंडलों का उत्तरदायित्व है, उसे राज्य से छीन लिया गया है और अब प्रान्तीय गतिविधि के क्षेत्र में आप एक और महत्वपूर्ण प्रस्थापना लेकर आते हैं, जो मूलाधिकार के वेश में है वह है, संपत्ति अर्जन के विषय में विधान बनाने का अधिकार। कम से कम सच बात तो कह दी जाये। सीधे खड़े होकर हम यह कह दें "ये हैं, आपके राज्य। हम आपमें विश्वास नहीं करते। आप प्रत्येक प्रान्त में अपने 200 सदस्य रख सकते हैं और प्रत्येक सदस्य का 150/- रुपया मासिक वेतन रख सकते हैं, परन्तु आपको विधान बनाने की शक्ति नहीं होगी, चाहे वह कर निर्धारण के संबंध की हो या किसी भी बात पर विधान बनाने के संबंध की हो।" जब तक ऐसा नहीं किया जाता, तब तक मैं समझता हूं कि हम उस रूप में कार्य नहीं कर सकते हैं, जिसकी हमसे आशा की जाती है। इस प्रकार से आप कब तक राज्यों को सहारा देते रहेंगे? इसी संविधान के अनेक अन्य उपबंधों में आपने राज्यों को सहारे के बल टिकाने की व्यवस्था की है। आपको मैं यह चेतावनी देता हूं कि जब तक आप सहारा देते रहेंगे, तब तक आप राज्य के विधान मंडलों में उस उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न नहीं होने देंगे, जिसका होना आप उनमें चाहते हैं: अमरीका या आस्ट्रेलिया के संयुक्त राष्ट्र ने राज्यों को बहुत अधिक शक्तियां दी हैं। क्या कोई इस प्रकार की शिकायत हुई है, जिसमें उन शक्तियों का दुरुपयोग किया गया हो, जो राज्यों को दी गई हैं? तो फिर राज्य के विधान मंडलों के भावी क्रियाकरण के प्रति यह संदेह क्यों, जबकि आपने राज्य के विधान मंडलों के क्रियाकरण में कोई ऐसे दुरुपयोग का उदाहरण न तो वर्तमान भारत में और न संसार के किसी अन्य भाग में ही देखा है?

राज्यों को जो उत्तरदायित्व सौंपा जा रहा है, उसके बारे में इतना कहने पर अब मैं अनुच्छेद 24 के वास्तविक कलेवर पर आता हूं। खंड (6) पर मुझे घोरतम आपत्ति है। किसी संविधान के प्रति तो क्या कहा जाये, बल्कि विधान तक का यह खंड खंडन करता है। खंड (6) को आप रखते ही क्यों हैं? मद्रास और बिहार ने क्या पाप किया है? उन्होंने भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 299 के निबन्धनों में विधान पारित किया है। इस संबंध में भारत शासन अधिनियम, 1935 बहुत ही महत्वपूर्ण तथा आवश्यक परित्राण निर्धारित करता है। और इन अभागे मंत्रिमंडलों ने अपने विधानमंडलों में जो विधेयक पुनःस्थापित किये हैं, उनकी सम्मति प्राप्त कर ली है। इन अभागे प्रान्तों के विधानमंडल के दोनों सदनों ने इन विधेयकों की पूरी-पूरी जांच कर ली है। जब भारत शासन अधिनियम, 1935 पार्लियामेंट में बनाया जा रहा था, उस समय लार्ड सभा में यह ठीक समझा गया कि द्वितीय सदनों की इस कारण व्यवस्था की गई है कि प्रान्तों के प्रथम सदन द्वारा किसी अनुत्तरदायित्वपूर्ण

कार्य में रोक लगायें। इन दोनों मामलों में इन प्रान्तों के इन विधानों को दोनों प्रथम तथा उत्तर सदनों ने स्वीकार कर लिया है। राज्यपाल तथा मुख्य राज्यपाल भी इनके साथ हैं। तो फिर राष्ट्रपति की अनुमति के लिये इन अधिनियमों को रखवा कर इन विधानमंडलों को लज्जित करने तथा निरादर करने की इस अति अस्वाभाविक रीति को आप क्यों ग्रहण करते हैं? इस संबंध में संविधान-सभा के इस अन्यायपूर्ण कार्य के समान क्या अन्य कोई कार्य है, जिसमें कि विधानमंडल द्वारा पारित किये गये अधिनियम को, जिसे राज्यपाल ने स्वीकार कर लिया हो और जिस पर मुख्य राज्यपाल ने अनुमति दे दी हो, फिर राष्ट्रपति की सम्मति के लिये भेजा जाये? संविधान निर्माताओं के संबंध में तो क्या कहा जाये, पर मेरी सम्मति से किसी भी विधानमंडल के प्रति यह अन्यायपूर्ण कार्य है। अतः इस सम्बन्ध में खंड (6) के प्रति मैं अपना घोरतम विरोध प्रदर्शित करता हूं।

खंड (6) के बारे में इतना कह कर मैं खंड (4) पर आता हूं। इन तीन प्रान्तों में परस्पर तुलना कीजिये। आप इन दो प्रान्तों को ही किसी विधान पारित करने में जल्दी करने के पाप के कारण क्यों ठुकरायें। यह एक ऐसा विषय है, जिसके बारे में मुझे आशा थी कि माननीय पंडित जवाहरलाल नेहरू इसकी कुछ व्याख्या करेंगे। इस व्याख्या के लिये मैं उत्सुक रहा, पर दुर्भाग्यवश ऐसी कोई व्याख्या नहीं की गई। क्या मसौदा-समिति हमें यह समझाने की कृपा करेगी कि यह भेदभाव क्यों किया गया है? यदि खंड (2) इतना निष्कलंक, पवित्र और बहुत ही लाभदायक है, तो खंड (4) क्यों आवश्यक है? अब से पश्चात् आप उड़ीसा, बंगाल, आसाम तथा शेष भारत में जमींदारी अर्जन करना असंभव बना रहे हैं। कुछ सदस्यों ने इसे पढ़ने का जितनी बार प्रयास किया है, उससे अधिक बार पढ़ने पर मैं यह दावा कर सकता हूं, कि इस संविधान के अधीन अब से पश्चात्, एक वर्ष के पश्चात्, जमींदारी अर्जन करना इसके कारण असंभव हो जायेगा। जमींदार चतुर तो हैं ही, अपनी थैली के बल पर, अपनी तीव्र मानसिक शक्ति, कुशाग्र बुद्धि और चातुर्य के बल पर और सबसे बड़ी बात यह कि उस किराये की बुद्धि के बल पर, जो भारत में सरलता से प्राप्त हो जाती है और जिसकी व्यवस्था अच्छे-अच्छे विश्वविद्यालय करते हैं, वे इस संबंध में भविष्योन्नति का मार्ग इस संविधान द्वारा ही रोक देंगे। संविधान सभा के सदस्यों को मैं आपके द्वारा चेतावनी देता हूं। और इस संबंध में मुझे बहुत दुख है, यहां तक कि आंखों में आंसू तक आ जाते हैं, क्योंकि किसानों का संगठन करने के लिये भारत में सबसे प्रथम व्यक्ति मैं था। मैं आन्ध्र जमींदारी रैयत संघ और मद्रास के प्रेसीडेंसी प्रोपराइटरी रैयत संघ को, जो कि इस रूप के किसानों के दो शक्तिशाली संगठन थे, सन् 1920 से चला रहा था—यह वह समय था, जब कि भारत में कहीं भी किसानों के संगठन की चर्चा तक न थी। मैंने समझा था कि अंग्रेजों के अधीनभारत में नहीं, परन्तु

[श्री विश्वनाथ दास]

स्वतंत्र भारत में हम अपने उद्देश्यों को प्राप्त कर लेंगे। भारत में स्वतंत्रता प्राप्त करने के दो वर्ष पश्चात् मैं देखता हूं कि मैं वहीं हूं, जहां कि सन् 1920 में था। इस अनुच्छेद पर पूर्ण विचार करने के पश्चात् ही इसके बारे में मेरी ये शंकायें हैं। पद धारण करते ही मैंने जमींदारी मिटाने के विधान को लेना चाहा और आज भी मुझे याद है कि मंत्रियों के सम्मेलन में बम्बई में जब हम इस विषय पर वाद-विवाद कर रहे थे और जब मैंने इस विषय को उठाया, तो कांग्रेस हाई कमान्ड के एक बड़े प्रभावशाली सदस्य मुझ पर टूट पड़े और कहने लगे "क्या जमींदारों को प्रतिकर आप देंगे?" श्रीमान, मैं जहां था वहीं हूं, पर मैं देखता हूं कि औरों में परिवर्तन हुआ है। मित्रों के भाषणों में जमींदारों के लिये उचित तथा न्याययुक्त प्रतिकर की मांग की गई है। एक कार्यालय के अतिरिक्त जमींदारी और क्या है। स्थायी बन्दोबस्त आनियमनों में यही विचार व्यक्त किया गया है। श्रीमान, मान लिया जाये कि वह कार्यालय नहीं है, तो प्रकाशम समिति के प्रतिवेदन को देखिये, जिसका केवल प्रथम सदन ने ही समर्थन नहीं किया है, वरन् मद्रास विधानमंडल के उत्तर सदन ने भी किया है। यह वृहद् सरकारी प्रतिवेदन स्थायी बन्दोबस्त के बारे में कांग्रेस के संकल्पों के निबन्धनों के अनुसार अपना मत प्रकट करता है। हम केवल अपने निर्वाचकों को दिये हुए वचनों पर ही अटल नहीं है, वरन् देश के स्वतंत्र हो जाने से जो परिवर्तन हो रहे हैं, उनकी ओर भी हमें देखना है।

सभा का मैं और अधिक समय नहीं लूंगा। पर श्रीमान, निर्वाचन काल की प्रतिज्ञाओं का उल्लेख किया गया है। हां, निर्वाचकों को हमने वचन दिया था और उन वचनों के आधार पर हमने निर्वाचन लड़े थे। 1937 और 1946 के निर्वाचनों में हमने लोगों को जमींदारी उन्मूलन करने के वचन दिये थे और अपने वचनों पर जोर दिया था। उस वचन का आप किस प्रकार पालन करेंगे? सन् 1937 में दुर्भाग्य से अपने वचनों में हम यह कह गये कि हम भारत शासन अधिनियम, 1935 के विरुद्ध संघर्ष कर रहे हैं। निर्वाचन के पश्चात् ही हमसे पद धारण करने के लिये कहा गया। मैं कुछ उन अभागों में से था, जिन्होंने पद धारण किये और जिन्होंने मंत्रिमंडल बनाने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया। उस समय हमें यह निर्देश दिये गये थे कि हम गतिरोध उत्पन्न कर दें और उस अधिनियम के क्रियाकरण को कठिन तथा असम्भव बना दें।

श्रीमान, अपने माननीय मित्र मसौदा-समिति के सभापति तथा श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर तथा अन्य मित्रों को विषय का विशिष्ट ज्ञान रखने और इन उपबन्धों पर इस प्रकार शक्कर चढ़ाने का कार्य करने में सबको मात करने पर, कि जिसके द्वारा आज उन्होंने असंभव को संभव कर दिया, मुझे बधाई देनी चाहिये।

संविधान के मसौदे पर ध्यान दीजिये? 1935 के अधिनियम को रद्द करने के बारे में आपको कुछ भी नहीं मिलेगा। यदि 1935 का अधिनियम इतना अच्छा था कि इस समय हम उसके उपबन्धों को अपने संविधान में इतने पूर्ण रूप से ले सकते हैं, तो क्या जब हमने इस अधिनियम के विरुद्ध संघर्ष करने और गतिरोध उत्पन्न करने का संकल्प किया था, उस समय हम कांग्रेसी बेवकूफ थे? जो कुछ भी हो, उस शक्कर चढ़ी गोली को निगल जाने के लिये हमें विवश करने पर, जिसमें 1935 के अधिनियम के सिवाय और कुछ न था, मसौदा-समिति के सदस्यों को मैं धन्यवाद देता हूं। इन परिस्थितियों में मेरे लिये अपने उन मित्रों का समर्थन करने के अलावा और कोई चारा नहीं है, जिनकी मांग यह है कि खंड (1) के अलावा इस अनुच्छेद के प्रत्येक अन्य खंड को रद्द कर दिया जाये। यदि ऐसा नहीं किया जाता है, तो मैं अपने मित्रों को चेतावनी देता हूं कि सिवाय मद्रास, बिहार और संयुक्त प्रान्त इन तीनों प्रान्तों के हम अन्य कहीं जमींदारी नहीं मिटा सकेंगे।

***माननीय सदस्यगण:** अब इस विषय पर मत लिया जाये।

***बेगम ऐज़ाज रसूल** (संयुक्त प्रान्त : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, मुझे आश्चर्य हो रहा है कि इतनी देर तक प्रतीक्षा करने के बाद इस महत्वपूर्ण तथा विवादास्पद विषय पर; मेरे प्रान्त के माननीय मुख्य मंत्री पंडित गोविन्द बल्लभ पन्त के भाषण के बाद, मुझे भाषण देने के लिये आमंत्रित करना मेरा सौभाग्य है या दुर्भाग्य। परन्तु एक प्रकार से मैं समझती हूं कि यह अच्छा ही है, चूंकि अपने भाषण में अपने प्रान्त के बारे में मैं कुछ भी कहूं, उसके बाद वे कोई उत्तर नहीं दे सकेंगे, यद्यपि मुझे विश्वास है कि कुछ बातें जो उन्होंने कही हैं, उनका उत्तर देते हुए मेरे पास पुष्ट प्रमाण है।

कल अनुच्छेद 24 पर यह संशोधन पेश करते हुए माननीय प्रधान मंत्री ने ठीक कहा था कि इस संविधान में ऐसे थोड़े से ही अनुच्छेद हैं, जिन पर इस अनुच्छेद से अधिक मात्रा में तथा अधिक उग्र रूप में वाद-विवाद हुआ हो। इसमें कोई संदेह नहीं कि एक वर्ष से अधिक समय से इस सभा के सदस्य तथा बाहर के भी व्यक्ति इस बात के प्रति बहुत उत्सुक रहे हैं कि संविधान में जो संपत्ति अर्जन और प्रतिकर सम्बन्धी सिद्धान्त निर्धारित किये जायेंगे, उनका क्या रूप और प्रकार होगा। श्रीमान, माननीय प्रधान मंत्री के प्रति उचित सम्मान प्रदर्शन करते हुए मैं यह कहने के लिये विवश हूं कि जो संशोधन उन्होंने प्रस्थापित किया है, वह न्याय और औचित्य पर आश्रित सिद्धान्तों का निर्धारण नहीं करता है। अनुच्छेद में दो सिद्धान्त निर्धारित किये गये हैं। पहला संपत्ति अर्जन खंड (1) है और दूसरा खंड (2) प्रतिकर देने की रीति और प्रकार है। श्रीमान, इसके बाद के अनुच्छेद 25 (1) यह स्पष्ट निर्धारित किया गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को सर्वोच्च न्यायालय

[बेगम ऐज़ाज रसूल]

में जाने का अधिकार होगा। यह केवल संपत्ति अर्जन के विषय में ही नहीं है, वरन् प्रत्येक प्रयोजन के लिये है। परन्तु साधारण रूप में भी किस व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह किसी अधिनियम के विरुद्ध मामला चला दे, जो संपत्ति अर्जन का प्राधिकार देता है, यदि उसकी सम्पत्ति में प्रतिकर उचित नहीं है। अत: श्रीमान, मेरा विरोध यह है कि इस संघ में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को सर्वोच्च न्यायालय में जाने और न्याय प्राप्त करने का अधिकार दिया है, तो केवल उन लोगों से खंड (4) और (6) के अधीन यह अधिकार क्यों ले लिया जाये, जो संयुक्त प्रान्त, मद्रास और बिहार इन तीन प्रान्तों में अपनी संपत्ति वे वंचित किये जा रहे हैं और जिनके ऊपर एक ऐसा विधान लागू किया जा रहा है, जो अधिकांश लोगों को अपनी जीवका के साधन से वंचित करेगा। मैं यह मानती हूं कि किसी देश के संविधान में ऐसे अपवाद नहीं किये जाते हैं और इसका कारण मैं अनुभव करती हूं कि यदि इस अनुच्छेद के खंड (4) और (6) रहने दिये जाते हैं, तो इस संविधान में यह एक बड़ा कलंक होगा। किसी देश का संविधान कुछ चंद वर्षों के लिये ही नहीं बनाया जाता है या किसी राजनैतिक पक्ष के किसी कार्यक्रम या आवश्यकता की सुविधा के लिए नहीं बनाया जाता है: वह पीढ़ियों तक के लिये बनाया जाता है और सब लोगों के लिये बनाया जाता है और खंड (4) और (6) जैसे उपबन्धों का रखना संविधान निर्माताओं के लिये कोई श्रेय की बात नहीं होगी और ये खंड भद्दे कलंक के रूप में रहेंगे। अत: मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि सद्भावना का प्रसार हो और इस प्रकार के मूर्खतापूर्ण उपबन्ध को सम्मिलित न किया जाये।

कुछ लोग शायद यह समझेंगे कि मैं ऐसा भाषण इस कारण दे रही हूं कि स्वयं मुझ पर इसका प्रभाव पड़ रहा है। परन्तु, श्रीमान, मैं यह कहूंगी, चाहे मेरी बात इस सभा में हल्की ही क्यों न समझी जाये, और मैं यह जानती हूं कि ऐसा कहते हुए मैं हजारों व्यक्तियों की भावनाओं और विचारों को प्रकट कर रही हूं कि इस प्रकार के विभेदात्मक खंडों को संविधान में स्थान नहीं मिलना चाहिये। भारत के कई समाचार पत्रों में इस विषय पर मुख्य लेख निकले हैं और उन्होंने घोर विरोध प्रकट किया है।

संयुक्त प्रान्त के माननीय मुख्य मंत्री ने कहा था कि जमींदारी उन्मूलन विधेयक, जिसको उन्होंने सभा में पुर:स्थापित किया है और जो इस समय प्रवर समिति के समक्ष है, जिसका सदस्य होने का मुझे सौभाग्य है, किसी भी न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जा सकता है और प्रतिकर के संबंध में जो उपबन्ध उन्होंने बनाये हैं, उनको कोई भी विधि-प्राधिकारी हो, ठीक मानेगा। मैं उनको सम्मानपूर्वक यह सुझाव दूंगी कि यदि यही बात है, तो फिर इस खंड (4) को क्यों प्रविष्ट किया गया है, जिसके बारे में यह प्रसिद्ध है कि उनके कहने पर ही प्रविष्ट किया जा रहा है? यदि वे यह समझते हैं कि उनका आधार इतना सुरक्षित है कि संयुक्त

प्रान्त के जमींदारों को वे जितना प्रतिकर दे रहे हैं, उसकी मान्यता, औचित्य और न्यायोचित्य को वे किसी भी न्यायालय में रख सकते हैं, तो मैं निवेदन करती हूं कि वे हमें उस अधिकार से वंचित न करें, जो इस संविधान के अधीन प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी न्यायालय में मामला पेश करने के संबंध में दिया गया है। संयुक्त प्रान्त के माननीय मुख्य मंत्री ने यह भी कहा था कि अवध के ताल्लुकदारों को मुकदमेबाजी का चाव है। श्रीमान्, मैंने समझा था कि यह बात हमारे पक्ष में जायेगी। यदि हम अपने धन को और लोगों में बांट देते हैं और वकीलों को धनवान होने में सहायता देते हैं, तो मैं नहीं समझती हूं कि इसके लिये हमारी निन्दा हो। मैंने खंड (4) और (6) के अपमार्जन करने की इस कारण सूचना दी है कि मैं समझती हूं कि ऐसे उपबन्धों को, जो कि अधिकतर संसदीय विधान के आधार पर हैं, देश के संविधान में स्थान ही न मिलना चाहिये।

मेरी आपत्ति दो बातों पर आश्रित है। एक जैसा कि मैं कह चुकी हूं, यह है कि कुछ प्रान्त, जिनमें संपत्ति अर्जन का विधान या तो लम्बित है या पारित हो चुका है, उनको उस मूलभूत अधिकार तथा मूलाधिकार से वंचित किया जा रहा है, जो भारत के प्रत्येक नागरिक को दिया गया है, अर्थात् सर्वोच्च न्यायालय में मामला चलाने का अधिकार। दूसरी बात है, औद्योगिक और जमींदारी संपत्ति में विभेद, क्योंकि इन तीन प्रान्तों के विधान में जमींदारी संपत्ति को ही लिया गया है। केवल यही नहीं, वरन् इसका यह भी आशय है कि संघ के किसी अन्य प्रान्त में, जैसे कि मध्य प्रान्त, पूर्वी पंजाब, राजस्थान इत्यादि में यदि कोई जमींदारी संबंधी विधान प्रस्तुत किया जाता है, तो उन प्रान्तों के लोगों को न्याय्य अधिकार प्राप्त होंगे। मुझे बहुत दुख है कि देश के संविधान में इस प्रकार के विभेद को स्थान नहीं मिलना चाहिये। श्रीमान् मुझे आशंका है कि आप मुझे समय नहीं देंगे. ..।

***अध्यक्षः** मैं समझता हूं कि यह अच्छा होगा कि आप भाषण समाप्त कर दें, क्योंकि 12.30 पर वाद-विवाद समाप्त करने के पूर्व मैं एक और सदस्य को कुछ समय के लिये भाषण देने का अवसर देना चाहता हूं।

***बेगम ऐज़ाज रसूलः** मैं केवल संयुक्त प्रान्त के बारे में कुछ बातें कहना चाहती हूं।

***अध्यक्षः** मैं नहीं समझता हूं कि यह आवश्यक है।

***बेगम ऐज़ाज रसूलः** मैं आपकी कृतज्ञ हूं कि आपने मुझे भाषण देने का अवसर दिया, पर मुझे खेद है कि जो समय मुझे दिया गया है, वह इतना कम है कि मैं कोई भी बात पूरी तरह से नहीं कह सकती हूं। संयुक्त प्रान्त के प्रधान मंत्री से मैं यह निवेदन करना चाहूंगी कि वे इस बात पर विचार करें कि इस खंड (4) को प्रवेश करा कर क्या वे अपने ऊपर यह अधिकार नहीं ले रहे हैं कि यदि विधान-मंडल यह समझे कि वित्तीय कारणों के आधार पर वह किसी प्रकार का कोई प्रतिकर नहीं दे सकता है, तो वे प्रतिकर न दें। माननीय प्रधान मंत्री ने कल यह कहा था कि विधान-मंडल सर्वोच्च है और उसके विनिश्चयों का कोई न्यायालय अतिक्रमण नहीं कर सकता है। यदि यह बात है, तो मूलाधिकारों को क्यों संविधान में रखा गया है? केवल इसलिये रखा गया है, तो इस बात

[बेगम ऐज़ाज रसूल]

का भय है कि लोग अन्य लोगों के अधिकारों का हरण न करें और इसलिये कुछ आधारभूत मूलाधिकार निर्धारित किये गये हैं, जो किसी भी विधान के क्षेत्र से परे हैं और जिनको प्रान्तीय या केन्द्रीय विधान-मंडल छू तक नहीं सकते। अत: मेरा आग्रह यह है कि या तो अनुच्छेद 24 को मूलाधिकारों के अध्याय में न रखा जाये और यदि उसको रखा जाता है, तो उसे बिना खंड (4) और (6) के रखना चाहिये। संयुक्त प्रान्त में लगभग एक करोड़ व्यक्तियों पर जमींदारी संबंधी विधान का प्रभाव पड़ रहा है। जो प्रतिकर प्रस्थापित किया गया है, वह इतना कम है कि उन लोगों के लिये अपने जीवन निर्वाह के लिये योजना बनाना बहुत कठिन होगा। क्या हमारे मुख्य मंत्री ने इस बात पर विचार किया है कि उन लोगों का क्या होगा? उनके पास जीविका का कोई ठीक साधन नहीं है; उनको गलियों में फैका जा रहा है। देश के समाजीकरण का अर्थ है कि सर्वत्र समाजीकरण हो। आप हमारे बच्चों के लिये नि:शुल्क शिक्षा की प्रत्याभूति कीजिये—प्रत्येक नागरिक को नि:शुल्क भैषजिक सहायता और नौकरी की प्रत्याभूति कीजिये और हम किसी भी प्रतिकर की मांग नहीं करेंगे—संयुक्त प्रान्त के मुख्य मंत्री को मैं चेतावनी देती हूं कि जमींदारों के लिये कोई समुचित व्यवस्था किये बिना उनकी जीविका के साधन से उन्हें वंचित कर वे स्वयं अपने लिये ऐसी समस्यायें खड़ी कर रहे हैं, जिनका सामना करना उनके लिये कठिन होगा। इन कुछ शब्दों में, मैं आशा करती हूं कि कुछ माननीय सदस्यों को इन खंडों के अन्याय के बारे में मैं विश्वास करा सकी हूं।

***अध्यक्ष:** मौलाना हसरत मोहानी साहिब मैं आपको यह याद दिलाना चाहता हूं कि हम 12.30 पर इस विषय को समाप्त कर रहे हैं।

***मौलाना हसरत मोहानी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान, मैं समय का ध्यान रखूंगा।

***श्रीमती रेणुका रे** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): अध्यक्ष महोदय, आपने अभी कहा था कि आप 12.30 बजे वाद-विवाद समाप्त करना चाहते हैं। मैं आपसे यह निवेदन करूंगी कि समस्त संविधान यह एक बड़ा ही मूलभूत खंड है और कई सदस्य इस अनुच्छेद पर बोलना चाहते हैं। मैं आशा करती हूं कि आप पूर्ण रूपेण वाद-विवाद होने देंगे।

***अध्यक्ष:** इस विषय पर पर्याप्त रूप से वाद-विवाद हो चुका है।

***मौलाना हसरत मोहानी:** अध्यक्ष महोदय, आरम्भ में ही मैं यह घोषणा कर दूं कि इस सारी विधि का मैं घोर विरोध करता हूं—मेरा आशय संयुक्त प्रान्त की सरकार तथा उसके मुख्य मंत्री द्वारा ग्रहण की गई विधि से है, जो इस धोखे में

है कि उनकी योजना से ज़मींदारी का उन्मूलन हो जायेगा। मैं समझता हूं कि उसके द्वारा ऐसी कोई बात नहीं होगी। मैं निवेदन करता हूं कि 'धोखे में है' शब्दों का मैंने जानबूझ कर प्रयोग किया है, क्योंकि मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरे माननीय मित्र संयुक्त प्रान्त के मुख्य मंत्री जैसे चतुर राजनीतिज्ञ को यदि उन्होंने अब तक नहीं समझा है, तो अब यह समझ जाना चाहिये कि उनकी योजना से जमींदारी का उन्मूलन नहीं होगा; वरन् उससे, मैं कहता हूं कि एक बड़े भयंकर रूप की ज़मींदारी प्रथा की स्थायी रूप से स्थापना हो जायेगी और इस प्रकार वे कुछ थोड़े से बड़े जमींदारों की जमींदारी छीनने की ही प्रस्थापना प्रस्तुत करते हैं और इस प्रकार प्राप्त की गई भूमि को वे उन छोटे-छोटे किसानों और यहां तक कि भूहीन मजदूरों में बांटना चाहते हैं, जो इस समय जो लगान दे रहे हैं, उसका दस गुना देने को तैयार हैं। वे कहते हैं कि यदि वे किसान दस गुना दे देंगे, तो वे उन्हें भूमिदार बना देंगे। मैं कहता हूं कि इस वाग्जाल में कोई भी नहीं फंसेगा। इसका क्या अर्थ है? जमींदार और भूमिदार में कोई अन्तर नहीं है। शायद पंडित पंत यह कहेंगे कि चूंकि 'जमीन' फारसी का शब्द है और 'भूमि' शब्द संस्कृत का है, इस कारण वे उस शब्द के स्थान में इस शब्द को रखना चाहते हैं। मैं कहता हूं कि इस धोखे में कोई नहीं आयेगा। मैं इसे केवल वाग्जाल कहता हूं। जिन भूमिदारों की वे उत्पत्ति कर रहे हैं, बाद में वे ही जमींदार हो जायेंगे और जैसा कि मैं कहता हूं, वे केवल उन बड़े जमींदारों को वंचित करेंगे, जो 5000/- रुपये से अधिक लगान देते हैं और उनके स्थान में वे बहुत से जमींदार बना देंगे। एक बड़े जमींदार और छोटे जमींदार में विभेद करने से कोई लाभ नहीं। जमींदार रहेंगे, और मैं यह मानता हूं कि यदि उनकी योजना अधिक न्याययुक्त आधार पर आश्रित होती तो उससे जमींदारी का उन्मूलन हो जाता। मैं कहता हूं कि यदि वे अपनी योजना को इस आधार पर बनाते कि बड़े-बड़े जमींदारों की भूमि को किसानों या राज्य को स्थानान्तरित कर दिया जाये, तो उससे कुछ लाभ होता।

हमारे प्रधान मंत्री माननीय पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अभी उस दिन अपने प्रारम्भिक भाषण में स्वयं यह स्वीकार किया था, जब उन्होंने कहा था "जिस संकल्प को मैं पेश कर रहा हूं, इसमें व्यक्तियों के अधिकार और संप्रदाय के अधिकार में संघर्ष को मिटाने का और इन दोनों अधिकारों पर पूर्णतया विचार करने का प्रयत्न किया गया है।" आगे चल कर वे कहते हैं "कि हमें इन बातों पर विचार करना होगा: हमें राज्य के लिये सम्पत्ति को लेना है और हमें यह देखना है कि उनको ठीक न्यायोचित प्रतिकर मिले।" मैं कहता हूं कि यदि हमारे प्रधान मंत्री के इस कथन को आप स्वीकार करें और यह भी स्वीकार करें कि भूमि का स्वामित्व जमींदारों से राज्य को स्थानान्तरित किया जायेगा, तब तो इसका कुछ अर्थ भी होगा। परन्तु आप क्या करने जा रहे हैं? आप एक अनोखी रीति अपना रहे हैं: आप कुछ बड़े-बड़े जमींदारों की जमीन जप्त कर रहे हैं और उस सीधे खुले बाजार में ले जा रहे हैं: आप उसे इन भावी भूमिदारों और किसानों को लाभ पर बेच रहे हैं। मैं कहता हूं कि 'काम पर' क्योंकि पंडित पंत ने स्वयं यह स्वीकार

[मौलाना हसरत मोहानी]

किया है कि वे लगभग 180 करोड़ रुपया इन भावी भूमिदारों से प्राप्त कर लेंगे और 140 करोड़ रुपया प्रतिक में देंगे। मैं कहता हूं कि 40 करोड़ रुपये की यह अधिक राशि—मैं कहता हूं कि यह एक निम्नतम कोटि का चोर बाजार है *(इसको मैं कुछ और नहीं कह सकता)*। हम सब अनाज मंडियों और कपड़े की मंडियों में जो चोर बाजार हो रहा है, उसकी निंदा करते हैं और मैं कहता हूं कि इसकी हमें और भी अधिक निंदा करनी चाहिये। इन बड़े जमींदारों से हम बिना किसी तुक के अधिकार छीन रहे हैं और उसे खुले बाजार में ले जाकर उन लोगों को बेचना चाहते हैं, जो छोटे जमींदार हैं।

अत: जो कुछ मैं निवेदन करता हूं, वह यह है कि मैं यह कभी नहीं मान सकता कि यह योजना जमींदारी उन्मूलन करने की योजना है। इस बात पर मैं आग्रह करता हूं, जमींदारी उन्मूलन करने के स्थान में यह उन भूमिदारी की बुरी प्रथा की स्थायी स्थापना करेगी, जिनको आप बना रहे हैं ओर जिनका वैसा ही ऐश्वर्य होगा। हम जमींदारों पर यह आपत्ति करते रहे हैं कि जमींदार होने का वे लाभ उठाते हैं और भूमि जोतने वाले को वे कोई लाभ नहीं होने देते। परन्तु यदि आप छोटे-छोटे जमींदार बना देंगे, तो वे भी ऐसा ही करेंगे और इससे बचने का कोई उपाय नहीं श्रीमान, मैं निवेदन करता हूं कि यदि वे यह कहें कि मैं निषेधमूलक आलोचना कर रहा हूं तो अपने माननीय मित्र पंडित पंत को सुझाव देने के लिये मेरे पास और कुछ है और वह यह कि वे अपना पूरा साहस बटोरकर आगे आयें और कम से कम उन कठिनाइयों को समझ कर, जो उनके मार्ग में आयेंगी तथा जमींदारों की ही आलोचना को नहीं, बल्कि जो आलोचना मैंने यहां की है, उसे समझ कर यह कहें कि वे संयुक्त प्रान्त के विधान-मंडल में इस विधेयक पर विचार-विमर्श स्थगित कर देंगे। मैं उनको चुनौती देता हूं कि वे आगे आयें और मेरे तर्क का खंडन करें। यदि नहीं कर सकते हैं, तो यहां इस सभा में वे इस अनुच्छेद पर विचार-विमर्श स्थगित करें और संयुक्त प्रान्त की सभा में भी विधेयक को स्थगित करें। मैं कोई असाधारण बात का सुझाव नहीं दे रहा हूं। वह यहां उस दिन हो चुकी है, जब कि मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने हिंदू संहिता विधेयक प्रस्थापित किया था। यह अनुभव करके कि इस विधेयक का घोर विरोध हो रहा है, उन्हें उस पर विचार-विमर्श स्थगित करने का उपक्रम किया। अपनी बचत करने के लिये उन्होंने स्वयं नहीं कहा बल्कि सरदार को यह काम सौंपा जिन्होंने अगली बैठक में यह कहा "हम इस पर विचार-विमर्श स्थगित करते हैं।" मैं समझता हूं कि वह वाद-विवाद एक अनिश्चित तिथि के लिए स्थगित हो गया है वह फिर नहीं लिया जायेगा। श्रीमान, मैं वह सुझाव रखता हूं कि मेरे माननीय मित्र पंडित पंत इसी प्रक्रिया को अंगीकार करें और सबको स्थगित करें अन्यथा वे आगे आये और सबसे पहले मेरी आलोचनाओं का उत्तर दें।

***कई माननीय सदस्य:** अब इस विषय पर मत लिया जाये।

***अध्यक्ष:** वाद-विवाद बन्द करने का प्रस्ताव पेश हो चुका है।

***श्री अलगू राय शास्त्री:** अध्यक्ष महोदय, मैं आपसे यह निवेदन करना चाहता हूं कि यह मामला बहुत अहम है और बहुत महत्वपूर्ण है।

***अध्यक्ष महोदय:** यहां दो चार घंटे और स्पीच हो जाने की वजह से इस मामले की अहमियत कुछ कम नहीं होती। इसलिये मैं समझता हूं कि इस पर और ज्यादा बहस न की जाय और क्लोजर जो पेश हो गया है, उसके बारे में मैं पूछ रहा हूं।

प्रश्न यह है:

"अब इस विषय पर मत लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** पंडित नेहरू!

***माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान, यदि आप अनुमति दें, तो मेरे माननीय मित्र श्री मुंशी उत्तर देंगे।

***अध्यक्ष:** श्री मुंशी उत्तर देंगे।

***श्री के.एम. मुंशी:** अध्यक्ष महोदय, जिन लोगों ने विभिन्न संशोधन पेश किये हैं, उनके भाषण धैर्यपूर्वक सुनने के पश्चात् मैं इस परिणाम पर पहुंचा हूं कि जो अनुच्छेद माननीय प्रधान मंत्री ने पेश किया है, उसे उन्हीं के शब्दों के अतिरिक्त कि यह एक ठीक समझौता है, जिसे समस्त सभा को एकमत होकर स्वीकार करना चाहिए, अन्य किसी रूप में और अधिक अच्छे प्रकार से व्यक्त नहीं किया जा सकता है।

सब पक्षों ने अपने-अपने दृष्टिकोण को बड़ी योग्यता से प्रस्तुत किया है। प्रधान मंत्री और मेरे माननीय मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर और संयुक्त प्रान्त के मुख्य मंत्री के बड़ी योग्यतापूर्ण विचार व्यक्त करने के पश्चात् बहुत कुछ कम कहा जा सकता है। पर सरसरी तौर पर मैं कुछ संशोधनों का उल्लेख करूंगा, जिनकी ओर ध्यान देना आवश्यक है।

ये संशोधन चार श्रेणियों में आते हैं। एक श्रेणी के संशोधनों में कहा गया है कि कोई प्रतिकर नहीं होना चाहिये। दूसरी श्रेणी के संशोधनों में कहा गया है कि संसद को मूलाधिकार के अधीन संपत्ति पर अधिकार नहीं करना चाहिये, वरन् राष्ट्रपति को अर्थात् कार्यपालिका को करना चाहिये। यह क्रूरता की ओर मुड़ना है; इस विषय पर मैं आगे और कुछ नहीं कहूंगा। तीसरी श्रेणी में कहा गया है कि प्रतिकर नियम कर देने के पश्चात्, चाहे वह प्रतिकर 'कपटयुक्त या अन्यायपूर्ण' हो, संसद को बिना किसी न्यायिक पुनर्विलोकन के संपत्ति पर अधिकार करने की पूर्ण

[श्री के.एम. मुंशी]

शक्ति दे देनी चाहिये। मैं संशोधन के शब्दों ही का प्रयोग कर रहा हूं और इस प्रकार संविधान द्वारा संसद को कोई ऐसी विधि पारित करने का अधिकार देना, जो कपटयुक्त या अन्यायपूर्ण हो। चौथा.....।

***श्रीमती रेणुका रे:** अध्यक्ष महोदय, मुझे यह कहना पड़ेगा कि सारी बात को गलत समझा गया है। बात यह है कि वह संसद ही होनी चाहिये, जो यह विनिश्चय करेगी कि सिद्धांत कपटयुक्त है या नहीं, न कि न्यायालय। संशोधन इस बात का समर्थन नहीं करता है कि कपटयुक्त आधारों को गहण करने दिया जाये, परन्तु संसद ही इस बात का विनिश्चय करेगी कि किसी अधिनियम में कपटयुक्त उपबन्ध हैं या नहीं। इस गलत पाठ को शुद्ध कर लेना चाहिये।

***श्री के.एम. मुंशी:** मैं किसी व्यक्ति की बात का गलत अर्थ या गलत निर्वचन नहीं करना चाहता हूं और फिर अपनी आदरणीया श्रीमती रेणुका रे की बात का तो विशेषकर। जिस संशोधन को वे विधि पुस्तक में रखना चाहती हैं, वह इस प्रकार है:

> "पूर्वकथित प्रकार से किसी विधि बनाने वाले उपबन्ध पर इस आधार पर कि जिस प्रतिकर की व्यवस्था की गई है, वह अपर्याप्त है अथवा इस आधार पर कि प्रतिकर के जिन सिद्धांतों और रीति का उल्लेख किया गया है, वे कपटयुक्त तथा अन्यायपूर्ण हैं, किसी न्यायालय में प्रश्न नहीं किया जायेगा।"

वे इस संविधान को अपने हाथों में लेकर अन्तर्राष्ट्रीय सभाओं में जाना चाहती हैं। इससे अधिक मैं और कुछ नहीं कहना चाहता हूं।

एक और श्रेणी संशोधनों की इस प्रकार की है, जब मूलाधिकार के साथ कोई कपट किया गया हो, तो सम्बन्धित पक्ष न्यायालयों के समक्ष जा सकते हैं। परन्तु न्यायालयों को सिद्धान्तों, रूप और रीति सबकी जांच करनी चाहिये, जिससे कि जैसा माननीय प्रधान मंत्री ने कहा था, सर्वोच्च न्यायालय तीसरा पुनरीक्षण करने वाला सदन हो जायेगा, जो संसद के दोनों सदनों से अधिक शक्तिशाली होगा। ये तीसरी श्रेणी के संशोधन हैं।

चौथी श्रेणी जमींदारों के सम्बन्ध में है, जो खंड (4) और (5) को निकालने के प्रयास में है, जिन खंडों पर मेरे माननीय मित्र पंडित गोविन्द बल्लभ पंत ने पूर्ण रूप से विचार प्रकट किये हैं।

श्रीमान, इस सभा के विनिश्चयों से या कांग्रेस के वचनों से या सरकार के वचनों से हम पीछे नहीं हट सकते हैं। जहां तक हमारे वचनों का सम्बन्ध है, वे अच्छी प्रकार से ज्ञात है और वे घोषणापत्रों में हैं। 1945 के निर्वाचन सम्बन्धी घोषणा-पत्र में हमने जमींदारों को न्यायोचित प्रतिकर देने तक का वचन दिया था।

श्रीमान, इस सभा के सम्बन्ध में भी, अप्रासंगिकता का दोषी हुए बिना, मैं निवेदन करता हूं कि जो प्रस्थापना उसने अंगीकार की है, उससे वह पीछे नहीं हट सकती है। जब यह विषय परामर्शदात्री समिति के समक्ष प्रस्तुत हुआ, तो उसने खंड (1) और (2) को सर्वसम्मति से स्वीकार किया। उस समय यह आशा की जाती थी कि संविधान-सभा में अन्तिम विचार-विमर्श करने के बहुत पूर्व ही जमींदारी मिटा दी जायेगी। सभा में इसको पेश करते हुए सरदार पटेल ने यह कहा था:

"अनेक लोक प्रयोजनों के लिये भूमि का अर्जन किया जायेगा, केवल भूमि ही नहीं, वरन् अनेक अन्य वस्तुओं का अर्जन करना पड़ेगा। राज्य प्रतिकर देकर उनका अर्जन करेगा, उनका हरण नहीं करेगा।"

आगे चलकर जमींदारी के सम्बन्ध में उन्होंने यह कहा था:

"यह खंड जो यहां है, कल या परसों विधि का रूप धारण नहीं करेगा। वह कम से कम एक वर्ष और लेगा।"

वास्तव में उस समय हमने सोचा था कि हमारी गति इतनी अधिक होगी कि हम अपने संविधान को एक वर्ष में समाप्त कर देंगे। यह निर्देश उनकी ओर से है, परन्तु दुर्भाग्यवश उनकी आशायें झूठी सिद्ध हुईं।

"वह कम से कम एक वर्ष और लेगा। इससे पूर्व बहुत-सी जमींदारी मिटा दी जायेंगी। वर्तमान विधियों के अधीन भी चाहे ठीक प्रतिकर देकर अथवा पर्याप्त प्रतिकर देकर अथवा जैसा भी विधान-मंडलों ने ठीक समझा, उसके अनुसार जमींदारी मिटाने का विधान विभिन्न प्रान्तों में प्रस्तुत हो गया है। अर्जन की विधि अब भी वर्तमान है और विधान-मंडल जमींदारी मिटाने का उपक्रम कर रहे हैं।"

अत: सभा ने दो वर्ष पूर्व यह कह कर इस संकल्प पर छाप लगा दी थी कि यद्यपि हमारे इस संविधान के पारित करने के बहुत पहले जमींदारी मिटा दी जायेगी, परन्तु जहां तक अन्य सम्पत्ति का सम्बन्ध है, उनको इस अनुच्छेद के खंड (2) के आधार पर अर्जित किया जायेगा।

अत: इस सभा ने यह स्थिति स्वीकार कर ली है कि अर्जन केवल विधि द्वारा ही हो सकता है, कि जब संसद विधि द्वारा संपत्ति अर्जन करती है, तो वह प्रतिकर नियत कर सकती है और यह कि चूंकि जमींदारी मिटा दी गईं होती, इस कारण इस अनुच्छेद में उसके निमित्त उपबन्ध बनाने की कोई आवश्यकता न थी। इस सभा का यह विनिश्चय है। इस अनुच्छेद में इस विनिश्चय का पालन किया गया है, सिवाय इसके कि आज जो परिस्थितियां विद्यमान हैं, उनके आधार पर इसमें कुछ रूप भेद कर दिया गया है, चूंकि वह आवश्यक है।

जैसा कि बताया जा चुका है, हमने संसद के क्षेत्र और शक्तियों को बहुत अधिक विस्तृत कर दिया है। सदस्य कृपया सूची 3 की 55 प्रविष्टि को देखें,

[श्री के.एम. मुंशी]

जिसको यह सभा पारित कर चुकी है। प्रतिकर के सिद्धांतों, रूप और रीति पर विधान बनाने की शक्तियां एक मात्र संसद तथा राज्य के विधान-मंडलों पर छोड़ दी गई हैं। जैसा कि सदस्यों को विदित है, भारत शासन अधिनियम की धारा 299 की भाषा में 'प्रतिकर देना' शब्दों का प्रयोग है। जिसका कम से कम एक दृष्टिकोण के अनुसार यह अर्थ है कि नकद देना चाहिये और देना अर्जन से पूर्व की स्थिति है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): क्या मैं अपने माननीय मित्र की गलती ठीक कर सकता हूं: क्या वे अनुसूची 7 की सूची 3 की प्रविष्टि 35 का उल्लेख कर रहे हैं?

***श्री के.एम. मुन्शी:** मेरे मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी की स्मरण शक्ति निस्सन्देह मेरी स्मरण शक्ति से कहीं अधिक शुद्ध है। मैं क्षमा चाहता हूं प्रविष्टि 35 है, न कि 55। उनको यह मानना पड़ेगा कि मैं एक बहुत वृद्ध व्यक्ति हूं।

***एक माननीय सदस्य:** ऐसे आप दिखाई तो नहीं देते हैं।

***श्री के.एम. मुन्शी:** अपने माननीय मित्र की तुलना में।

यह कहना सही नहीं है कि संसद् को पूर्ण शक्तियां नहीं दी गई हैं। वह प्रतिकार का स्वरूप तथा उसके दिये जाने की रीति नियत कर सकती है। अर्जित भूमि के बदले में वह हुंडियां या भूमि दे सकती है। पहले भारत के विधान-मंडलों को जितनी शक्तियां प्राप्त थीं, उससे भी अधिक व्यापक शक्तियां उसके पास हैं। अत: संसदीय शक्तियां और अधिक बढ़ गई हैं। न्याय्यता के विषय में और विशेषकर वकीलों के लिये बार-बार चाहे जो कुछ भी कहा गया हो, यह याद रखिये कि दो बातों की एक मात्र निर्णायक संसद ही है। सर्वप्रथम तो वह निर्धारित सिद्धांतों के औचित्य की एक मात्र निर्णायिका है, जब तक कि वे सिद्धांत रूप में हैं। दूसरी बात यह है कि यह प्राधिकृत रूप से निर्धारित कर दिया गया है और इसके बारे में रंचमात्र भी संदेह नहीं है कि भिन्न-भिन्न वर्ग की संपत्ति के लिये और भिन्न-भिन्न उन उद्देश्यों के लिये, जिसके हेतु संपत्तियां अर्जित की जाती हैं, सिद्धांतों में परिवर्तन होगा। जैसा कि मेरे माननीय मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर द्वारा कहा जा चुका है। अंग्रेजी की विधि पुस्तकों में हमें कई अधिनियम मिलते हैं, भूमि अर्जन अधिनियम, भूमि सम्बन्धी खंडों का अधिनियम, निवासन अधिनियम, इन सबमें केवल संपत्ति के प्रकार के अनुरूप ही नहीं, वरन् जिस प्रयोजन के लिये संपत्ति अर्जित की जाती है, उसके अनुरूप प्रतिकर का भिन्न-भिन्न आधार है। प्रत्येक विषय में जिन सिद्धांतों को लागू किया जायेगा, उनका विनिश्चय करने वाली तथा उनकी निर्णायिका संसद है।

इस सम्बन्ध में यदि मुझे आज्ञा हो, तो मैं अपने निजी अनुभव का उदाहरण दूंगा। खेर के मंत्रिमंडल काल में जिसका सदस्य होने का मुझे भी सौभाग्य प्राप्त

था, सन् 1938 में बम्बई सरकार ने बारदोली की भूमि का अर्जन करना चाहा। एक सम्पत्ति का मूल्य पांच लाख था। पर एक ऐसे बाजार में, जिसमें और कोई खरीददार न था और उस संपत्ति के खरीदने के लिये आयुक्त राज्य के किसी पुराने दीवान को अपने साथ लाये थे, उस सम्पत्ति को लगभग 6000/- रुपये में खरीदा गया। उस सम्पत्ति से लगभग 80,000/- रुपया वार्षिक आय थी, जिसका वह लगभग 10 वर्ष से उपभोग कर रहा था। हमने एक ऐसा मसौदा बनाया कि इस सम्पत्ति का क्रय ऐसी परिस्थितियों में किया गया था कि उसे उचित बाजार दर न मिल पाई और गम्भीर राजनैतिक परिस्थितियों के कारण सामान्यतया कोई खरीददार खड़ा नहीं हुआ। इस कारण एक सिद्धांत निर्धारित करना पड़ा, जिसके आधार पर उसके उस समय के स्वामी को 6 प्रतिशत मिलाकर वह राशि दे दी जाये मुझे यह सूचना मिली कि उस समय की भारत सरकार ने अपने कानूनी परामर्शदाताओं के पास इस विषय को भेजा और दो बातों पर उनसे सम्मति ली। सर्वप्रथम इस बात पर कि उस अधिनियम में प्रतिकर का जो आधार हमने निर्धारित किया था, उसमें भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 299 के अर्थ से संगत सिद्धांत है या नहीं, दूसरी इस बात पर कि भूमि अर्जन अधिनियम में निर्धारित सिद्धांत से विलग होना बम्बई विधान-सभा की शक्तियों के अधीन है या नहीं। इन दोनों बातों में हमारी स्थिति को वैध माना गया और मुख्य राज्यपाल (गवर्नर जनरल) ने उस विधेयक पर मंजूरी दे दी।

सिद्धांत विधि के कठोर नियम नहीं होते हैं, जिनका यंत्रवत् पालन किया जाये। प्रत्येक स्थिति की परिस्थिति की देखभाल कर उनको सूचित किया जायेगा, जो सुधार किये जायेंगे, उनके अनुसार, जिस प्रयोजन के लिये संपत्ति अर्जित की जायेगी, उसके अनुसार उनको सूचित किया जायेगा। प्रत्येक विषय में संसद इस बात का निर्णय करेगी कि क्या उचित तथा न्यायोचित है और जो सिद्धांत निर्धारित किये गये हैं, क्या वे उन परिस्थितियों के अनुसार उचित तथा न्यायोचित प्रतिकर देने की व्यवस्था करते हैं।

न्याय्यता का प्रश्न इस वाद-विवाद में अनावश्यक रूप से प्रस्तुत कर दिया गया है। किसी भी सभ्य देश में यदि लिखित संविधान है, तो उसका प्रत्येक अनुच्छेद तथा संसद द्वारा निर्मित प्रत्येक विधि इस रूप में न्याय्य है कि न्यायालय यह विनिश्चय करने के लिये उनमें से प्रत्येक का परीक्षण कर सकता है कि विधि निर्माण प्राधिकारी ने अपनी शक्तियों के अन्तर्गत कार्य किया है और उसके उपबन्धों के अर्थ और प्रभाव का सुनिश्चयन हो सकता है। चाहे आप "प्रतिकर पर न्यायालय में आपत्ति नहीं की जायेगी" शब्दों का प्रयोग करें, फिर भी न्यायालय को 'न्यायालय में आपत्ति' का क्या अर्थ है: क्या जिस बात पर आपत्ति की जायेगी, वह प्रतिकर है; क्या विधि में विधान-मंडल प्रतिकर पर संपत्ति अर्जन कर रहा है, इन पर निर्णय करने का अधिकार होगा। इस बात में कोई भ्रम नहीं होना चाहिये।

[श्री के.एम. मुंशी]

जब तक आप जनजाति की विधि को ग्रहण नहीं करेंगे, जिसमें कि जनजाति के सरकार की आज्ञा ही अन्तिम शब्द होता है, तब तक आप वकीलों के दल से नहीं बच सकते हैं। परन्तु एक बात स्पष्ट है। वकीलों के दल का शासन सदैव आततायियों के दल के शासन से अच्छा है।

***एक माननीय सदस्य:** वकीलों को एक अनुसूची में क्यों न रख दिया जाये।

***श्री के.एम. मुन्शी:** हम उन्हें एक अनुसूची में रख सकते हैं; स्वयं अपने ऊपर विधान बनाने में उन्हें बड़ी खुशी होगी; पर विधि को वे न्यायालय में ले जायेंगे और सफल होंगे—अनुसूची हो या न हो।

प्रश्न यह है कि इस अनुच्छेद में न्याय्यता कहां तक है? इस अनुच्छेद द्वारा यह अपेक्षा की जाती है कि यदि विधान-मंडल को इस संविधान द्वारा सौंपे गये उत्तरदायित्व का प्रयोग करना है, तो उसे प्रतिकर के सिद्धांत निर्धारित करने चाहिये; उसे प्रतिकर के उस रूप और रीति को निर्धारित करना चाहिये, जिसके अनुसार प्रतिकर दिया जायेगा और यदि वह उतना प्रतिकर देता है, जो क्षति के बराबर है, तो कोई न्यायालय इस उपक्रम की नीति का खंडन नहीं करेगा। ब्रिटिश संयुक्त राष्ट्र संघ के न्यायालयों द्वारा तथा अमरीका के उस सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भी यह बात बार-बार निर्धारित की है, जिसके संविधान में ये शब्द हैं—"उचित प्रतिकर" और जहां संविधान में "उचित विधि का खंड" है। संसद की सद्भावना के स्थान में न्यायालय अपनी सद्भावना नहीं रखेगा; अनिवार्यत: बाजार-भाव के स्तर के आधार पर वह प्रतिकर की पर्याप्तता पर निर्णय नहीं करेगा; वह तब तक संसद के निर्णय पर आपत्ति नहीं करेगा, जब तक कि अपर्याप्तता इतनी अधिक न हो कि जो सम्पत्ति पर स्वामित्व रखने के मूल अधिकार के प्रति धोखा हो।

जो लोग न्याय्यता से डरते हैं, उनके मन में यह आशंका है कि यदि प्रतिकर के सिद्धांतों का निर्धारण करने वाली विधि न्यायालय में जाती है, तो न्यायालय सदैव बाजार-भाव के स्तर पर प्रयोग करेगा। यह बात कभी नहीं हुई। जैसा कि मैंने कहा था अमरीका में, जहां कि 'उचित प्रतिकर' शब्द संविधान में है और जहां 14वां संशोधन सर्वोच्च न्यायालय को 'उचित विधि का खंड' से सुसज्जित करता है, उसे इस रूप में कभी नहीं माना गया। अमरीका के एक मामले में प्रतिकर के रूप में केवल एक डालर दिया गया था, यद्यपि वह एक अन्तिम कोटि का तथा असामान्य मामला था। न्यायालय का यह विचार हुआ कि मामले की परिस्थितियों को देखते हुए एक डालर ही ठीक प्रतिकर है। अत: हमें यह न मानना चाहिये कि हमारे सर्वोच्च न्यायालय में एक ऐसी मूर्खमंडली होगी, जो हर प्रकार के अर्जन पर बाजार-भाव के नियम को निर्विभेद रूप से लागू करेगी।

यह ठीक है कि इससे संविधान से हम इस प्रकार के खंड को बाहर नहीं निकाल सकते हैं। यह अनावश्यक है कि सम्पत्ति अर्जन के विषय में विधान-मंडल

के अधिकार की समुचित रूप में परिभाषा होनी चाहिये। यह भी समान रूप से आवश्यक है कि जहां हमारे संविधान में दिये हुए सम्पत्ति पर कब्जा करने के मूलाधिकार का त्रुटिपूर्ण हरण हो; जहां अपने अधिकारों से बाहर कार्य करते हुए, या प्रतिकर की राशि अथवा उन सिद्धांतों के बिना नियत किये हुए जिनके अनुसार वह प्रतिकर निश्चित किया जायेगा, विधान-मंडल ने सम्पति पर अधिकार कर लिया हो या जहां अर्जन के रूप में सम्पत्तिहरण हो; जहां निर्धारित सिद्धांत नाममात्र के हों या जहां प्रतिकर के सिद्धांत अथवा रीति अथवा स्वरूप उचित समाधान न प्रदान करने वाले हों या जैसा कि मेरे एक महामान्य मित्र ने कहा है, जहां यह समूची व्यवस्था संविधान के प्रति धोखा हो, तो न्यायिक पुनर्विलोकन होने दिया जाये। अतः मैं निवेदन करता हूं कि आपके समक्ष जिस रूप में यह मसौदा रखा गया है, वह उस प्रत्येक विचार का समाधान करता है, जो माननीय समस्यों के किसी भी वर्ग द्वारा इस सभा में प्रस्तुत किया गया है।

एक और अन्य प्रश्न जमींदारी का है और मेरे माननीय मित्र, मुख्य मन्त्री पंत के योग्यतापूर्ण तथा स्पष्ट विचार प्रदर्शन के पश्चात् मुझे और अधिक कुछ नहीं कहना चाहिये। जैसा कि इस विवाद में एक समय प्रतीत हुआ था, मैं यह नहीं चाहता हूं कि यह वाद-विवाद संयुक्तप्रांत के मुख्य मंत्री और संयुक्तप्रान्त के जमींदारों में विवाद का विषय बन जाये। आपको देश के एक समूचे रूप पर ध्यान देना चाहिये। दो वर्ष पूर्व इस संविधान-सभा ने यह आशा की थी कि इस संविधान का अन्तिम स्वरूप बनने के पूर्व ही जमींदारी का उन्मूलन हो जायेगा। अतः खंड (4) और (6) के रखने में हम संविधान-सभा के विनिश्चय से पीछे नहीं हट रहे है। इस प्रश्न में कितने मनुष्य फंसे हुए हैं, इस ओर ध्यान दीजिये। जो संकट है उनकी कल्पना करिये। न तो इस विवाद के गुणावगुणों से और न जमींदारों की उत्पत्ति से मेरा सम्बन्ध है, जिसका वर्णन मेरे मित्र श्री कला वेंकटा राव ने किया है। मेरा सम्बन्ध केवल इस बात के बताने से है कि मद्रास, बिहार और संयुक्तप्रान्त के विधेयक देश के समक्ष आ गये हैं। उनके अनुसार कार्यवाही आरम्भ हो गई है। इस संविधान के प्रवर्तन में आने के पश्चात् हम बहुत से लोगों को उनके अधिकारों के प्रति अनिश्चित दशा में नहीं रहने दे सकते हैं।

***बेगम ऐज़ाज़ रसूलः** क्या मैं यह जान सकती हूं कि एक प्रांत में जांच के लिये एक मामला प्रतिकर सम्बन्धी सिद्धांतों के विनिश्चय करने के लिये पर्याप्त नहीं है?

***श्री के.एम. मुन्शीः** आप यह समझ जायेंगी कि इसके गुणावगुणों से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि खंड (4) और (6) निकाल दिये जाते हैं, तो क्या होगा? न तो मैं मद्रास, संयुक्तप्रान्त या बिहार का हूं और न मेरे कोई जमींदारी है, परन्तु हम इन विधानों की मान्यता के विषय पर न्यायालय में इस कारण आपत्ति नहीं करने देंगे कि इन बातों का प्रभाव बहुत दूर तक होगा और उनका करोड़ों व्यक्तियों

[श्री के.एम. मुन्शी]

पर प्रभाव पड़ेगा। यही कारण है कि मैं इससे सहमत हूं और मैं समझता हूं कि यह एक बहुत ही पुष्ट आधार है। तीन जमींदारी विधानों के लिये परिमाण का उपबन्ध किया गया है। तीनों विधेयक राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत होंगे और यदि वे उचित समझते हैं, तो यह देखने के विचार से कि न्याय किया जा रहा है, वे प्रान्तीय मन्त्रिमंडलों से परामर्श करेंगे या उसको मंत्रणा देंगे। विधानों का न्यायिक पुनर्विलोकन नहीं होगा।

***डॉ. पी.एस. देशमुख** (मध्य प्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान, क्या मैं यह जान सकता हूं कि वह इस अनुच्छेद के पक्ष में तर्क प्रस्तुत कर रहे हैं या विपक्ष में?

***अध्यक्ष:** आप स्वयं परिणाम निकाल सकते हैं।

***श्री के.एम. मुन्शी:** यदि आप न्यायिक पुनर्विलोकन चाहते हैं, तो मैं आपको बता दूं कि परिणाम क्या होगा। इन तीन विधान द्वारा सात करोड़, चालीस लाख एकड़ पर प्रभाव पड़ा है। दूसरी बात यह कि सात करोड़, बीस लाख किसानों, भूमि के जोतने वालों, पर प्रभाव पड़ा है। यदि आप इन जमींदारों की संख्या लें, जिनको 16 वर्ष की आय से न्यून मिलेगा, जिसको प्रतिकर का सदैव एक उदारतापूर्ण रूप माना गया है, तो वे लोग 13,000 हैं, यदि आप 12 वर्ष की आय लें, तो 5,000 लोगों पर केवल प्रभाव पड़ेगा इसके विरुद्ध सात करोड़, बीस लाख किसान हैं। क्या आप यह चाहते हैं कि इन सब लोगों के अधिकार 6 वर्ष तक लटकते रहें और मुकदमेबाजी की ये कठिन रीति अधीन न्यायालय से, जिला न्यायालय को और जिला न्यायालय से उच्च न्यायालय को तथा इसी प्रकार से और आगे चलती रहे और ये सब नई व्यवस्थायें, जिनकी स्थापना की जा चुकी हैं, उलट दी जायें? हम ऐसा नहीं कर सकते हैं। यह तो एक क्रांति हो। केवल 5,500 जमींदारों के हितों का परिमाण करने के लिये ही हम उससे पीछे नहीं हट सकते.....।

***बेगम ऐज़ाज रसूल:** क्या मैं, यह जान सकती हूं कि आपने इन अंकों की गणना किस प्रकार की है?

***श्री के.एम. मुन्शी:** मुझे ये अंक यहां उपस्थित मंत्रियों से प्राप्त हुए हैं और उन्हें ये अंक उन लेखों से प्राप्त हुए हैं, जो उनके पास हैं। जो कुछ अंक उन्होंने मुझे दिये हैं, यदि वे सही नहीं हैं, तो मैं भी सही नहीं हूं।

***बेगम ऐज़ाज़ रसूल:** क्या मैं माननीय सदस्य को सूचना दे सकती हूं कि केवल संयुक्तप्रान्त में आश्रित व्यक्तियों को छोड़कर, जिन लोगों पर सीधा प्रभाव पड़ता है, उनकी संख्या 22 लाख है?

***श्री के.एम. मुन्शी:** मेरे पास संयुक्तप्रान्त के भी अंक हैं। संयुक्तप्रान्त में केवल 10,000 जमींदार हैं जिनको 13 वर्ष की आय से कम प्राप्त हुआ है। ये अंक मैंने पंडित पंत से लिये हैं और इन पर विवाद करने के लिये कोई कारण प्रतीत नहीं होता है। पर यदि यह भी मान लिया जाये कि वे लोग 10,000 नहीं बल्कि 30,000 हैं तो भी क्या आप इस संख्या की तुलना सात करोड़ बीस लाख से कर सकते हैं। क्या आप देश में क्रान्ति-किसान विद्रोह-कराना चाहते हैं और चन्द हजार व्यक्तियों को अपने ऐश्वर्य में मस्त रखना चाहते हैं जिससे कि वे लोग उन सब ऐश्वर्यों को प्राप्त करते रहें जो उन्हें पिछली शताब्दियों में प्राप्त थे?

***एक माननीय सदस्य:** व्यक्तिगत हानि के बारे में क्या विचार है?

***श्री के.एम. मुन्शी:** श्रीमान, व्यक्तिगत दृष्टिकोण से मैं इस पर विचार नहीं कर रहा हूं। मैं जानता हूं कि मेरे कुछ मित्र जिनको कल तक 5,000 रुपया मासिक आय थी आज उनकी आय कम होकर 500 रुपया तक रह गई है। परन्तु इस जमींदारी विधान पर हम व्यक्तियों को ध्यान में रख कर विचार नहीं कर सकते हैं। यह एक राष्ट्रीय तथा सामाजिक क्रान्ति है जिसको हम प्राप्त कर चुके हैं और उससे हम पीछे नहीं हट सकते हैं।

***एक माननीय सदस्य:** राज्य किस प्रकार।

***श्री के.एम. मुन्शी:** मैं चाहता हूं कि आप मेरे भाषण में बाधा देना बन्द करें। मैं निवेदन करता हूं। कि सब महत्वपूर्ण बातों पर वाद-विवाद करने के पश्चात् जो यह समझौता किया गया है वही सर्वोत्तम और ठीक समझौता है और मैं यह चाहता हूं कि सभा इसे स्वीकार करे।

श्रीमान, कुछ संशोधन हैं जिनको मैं स्वीकार करना चाहता हूं। एक श्री यदुवंश सहाय का संशोधन संख्या 405 है जो 'और दिया जाना है' शब्द 'प्रतिकर निश्चित किया जाना है' शब्दों के बाद जोड़ने के लिये है। ये शब्द टाइप की गलती से रह गये।

अन्य संशोधन जिनको मैं स्वीकार करता हूं संख्या 504 और 505 हैं जो शाब्दिक रूप के हैं। और इसके बाद मैं संख्या 428 को स्वीकार करता हूं जिसे मेरे मित्र श्री कला वैंकटा राव ने पेश किया है। वे यह चाहते हैं कि एक वर्ष के काल को बढ़ा कर अठारह महीने कर दिया जाये क्योंकि कुछ लोग यह समझते हैं कि मद्रास और बिहार के विधानों के लिये ठीक-ठीक तिथि नियत नहीं की जा सकती है। एक अन्य संशोधन जिसे मैं स्वीकार करता हूं वह भी जसपतराय कपूर द्वारा विस्थापितों की सम्पत्ति के संबंध में पेश किया गया है। माननीय गोपालस्वामी आयंगर के सुझाव देने पर उन्होंने उसका फिर से मसौदा बनाया है और कुछ भाषा संबंधी सुधार किया है जिससे कि यही अर्थ बोध हो।

[श्री के.एम. मुन्शी]

इन पांच संशोधनों के अतिरिक्त मैं और सब संशोधनों का विरोध करता हूं। मैं आशा करता हूं कि सभी इन संशोधनों के साथ इस अनुच्छेद को स्वीकार करेंगे।

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): क्या मैं श्री मुंशी से प्रश्न कर सकता हूं कि–

***अध्यक्ष:** मैं नहीं समझता हूं कि और अधिक प्रश्न किये जायें या उत्तर दिये जायें।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** मेरे मित्र ने श्री सहाय का संशोधन स्वीकार कर लिया है, पर अधिमान मेरे संशोधन को मिलना चाहये क्योंकि 'paid' शब्द वास्तव में 'given' शब्द से बेहतर है।

***अध्यक्ष:** मैं नहीं जानता, स्वीकार करना या न करना उनका काम है। अब अधिक प्रश्न नहीं होंगे। मैं संशोधन पर मत ले रहा हूं।

इस प्रश्न पर मत लेने की जिस प्रक्रिया का मैं पालन कर रहा हूं वह यह है। सर्वप्रथम मैं उन संशोधनों को लूंगा जिनमें मूल संशोधन 369 के स्थान में अन्य संशोधन रखने का प्रयास किया गया है। इनके समाप्त हो जाने के पश्चात् मैं कंडिकाओं को क्रमानुसार लूंगा और प्रत्येक कंडिका के संशोधनों को लूंगा।

प्रथम संशोधन, जिसमें समूची बात को बदलकर रखने का प्रयास किया गया है, संख्या 383 है जिसे श्री दामोदर स्वरूप ने पेश किया है।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 361 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के स्थान में यह अनुच्छेद रखा जाये–

'24. (a) The property of the entire people is the main stay of the State in the development of the national economy.

(b) The administration and disposal of the property of the entire people are determined by law.

(c) Private property and private enterprises are guaranteed to the extent they are consistent with the general interests of the Republic and its toiling masses.

(d) Private property and economic enterprises as well as their inheritance may be taxed, regulated, limited, acquired and requisitioned, expropriated and socialised but only in accordance with the law. It will be determined by law in which cases and to what extent the owner shall be compensated.

(e) Expropriation over against the States, local self-governing institutions, serving the public welfare, may take place only upon the payment of compensation.' "

[24. (क) राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की उन्नति में समस्त लोक की संपत्ति राज्य का सबसे बड़ा आधार है।

(ख) समस्त लोक की संपत्ति का प्रशासन और यापन विधि द्वारा विनिश्चित किया जाता है।

(ग) निजी संपत्ति और निजी उद्यमों की वहीं तक प्रत्याभूति की जाती है जहां तक कि वे गणराज्य तथा उसके श्रमिक वर्गों के साधारण हितों से संगत है।

(घ) निजी संपत्ति तथा आर्थिक उद्यमों तथा उनके उत्तराधिकार पर भी करा रोपण, उनका विनियमन, परिसीमन, अर्जन तथा अधिग्रहण, हरण तथा समाजीकरण होगा परन्तु केवल विधि के अनुसार विधि द्वारा यह विनिश्चय किया जायेगा कि किन विषयों में और किस सीमा तक स्वामी को प्रतिकर दिया जाये।

(ङ) राज्यों और लोक कल्याणार्थ स्थानीय स्वायत्तशासी संस्थाओं की संपत्ति हरण प्रतिकर देने पर ही हो सकेगा।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** इसके बाद मैं प्रो. सक्सेना के संशोधन संख्या 384 पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 720 से 769 के निर्देशानुसार अनुच्छेद 24 के स्थान में यह अनुच्छेद रखा जाये:—

'24. (1) No person shall be deprived of his property save by authority of law.

[अध्यक्ष]

(2) No property, movable or immovable, including any interest in, or in any company owning, any commercial or industrial undertaking, shall be taken possession of or acquired for public purposes under any law authorising the taking of such possession or such acquisition except on payment in cash or bonds or both of the amount determined as compensation in accordance with principles laid down by such law.

(3) Nothing in clause (2) of this article shall affect—

(a) the provisions of any existing law, or

(b) the provisions of any law which the State may hereafter make for the purpose of imposing or levying any tax or for the promotion of public health or the prevention of danger to life and property.' "

[24. (1) विधि के प्राधिकार के बिना कोई व्यक्ति अपनी सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जायेगा।

(2) कोई स्थावर या जंगम संपत्ति, जिसके अन्तर्गत किसी वाणिज्यिक या औद्योगिक उपक्रम में या उसकी स्वामिनी किसी कंपनी में कोई अंश भी है। ऐसी विधि के अधीन जो ऐसा कब्जा या अर्जन करने का प्राधिकार देती है सार्वजनिक प्रयोजन के लिये नकदी या हुंडी या दोनों में उस राशि को देकर ही कब्जाकृत या अर्जित की जायेगी जो उस विधि में निर्धारित सिद्धान्त के अनुसार प्रतिकर के रूप में निश्चित की जाती है।

(3) खंड (2) की किसी बात से—

(क) किसी वर्तमान विधि के उपबन्धों पर, अथवा

(ख) एतत्पश्चात् राज्य कोई विधि किसी कर के आरोपण या उद्ग्रहण के अथवा सार्वजनिक स्वास्थ्य की उन्नति के अथवा प्राण या संपत्ति के संकट निवारण के लिये बनाये उसके उपबंधों पर प्रभाव नहीं होगा।

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** इसके बाद मैं श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के संशोधन संख्या 385 को लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 720 के स्थान में यह संशोधन रखा जाये:—

"कि अनुच्छेद 24 के स्थान में यह अनुच्छेद रखा जाये:–

'24. (1) All private property in the means of production may be acquired by the Government of India.

(2) The President shall determine in each case to what extent, if any, the owner whether a private individual, a State, a local self-governing institution or a company, shall be compensated.

(3) That within four years from the date of the commencement of this Constitution, the Union Government shall become the owner of all private property in land which is being used or capable of being used for agricultural purposes.

(4) Any existing law or the provisions of any law which may thereafter be made contrary to the provisions of this article shall be null and void.

(5) The provisions of this article may be amended if ratified by the people signified by 51 per cent of the total number of voters on the electoral list framed on the basis of adult franchise.' "

[24. (1) उत्पादन के साधनों में समस्त निजी संपत्ति भारत सरकार द्वारा अर्जित की जायेगी।

(2) प्रत्येक विषय में राष्ट्रपति यह निश्चय करेगा कि उसके स्वामी को, चाहे वह कोई निजी व्यक्ति राज्य, स्थानीय स्वायत्तशासी संस्था अथवा कंपनी हो, यदि प्रतिकर दिया जाये तो कितना दिया जाये।

(3) इस संविधान की प्रारम्भ तिथि से चार वर्षों के अन्तर्गत संघ सरकार उस भूमि रूपी समस्त निजी संपत्ति की स्वामिन हो जायेगी जिसका कृषि प्रयोजनों के लिये उपयोग हो रहा है अथवा हो सकता है।

(4) कोई वर्तमान विधि या एतत्पश्चात् निर्मित किसी विधि के उपबंध इस अनुच्छेद के उपबंधों के विरुद्ध है तो वे रद्द हो जायेंगे।

[अध्यक्ष]

(5) वयस्क मताधिकार के आधार पर बनी हुई मतदाताओं की सूची में के मतदाताओं की समस्त संख्या का 51 प्रतिशत द्वारा यदि अनुसमर्थित कर दिया जाता है तो इस अनुच्छेद के उपबंधों में संशोधन हो सकेगा।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** इसके बाद श्री त्रिपाठी का संशोधन संख्या 472।

***श्री किशोरी मोहन त्रिपाठी** (मध्यप्रान्त और बरार राज्य): श्रीमान, मैं अपने संशोधन को वापस लेना चाहता हूं।

(सभा की अनुमति से संशोधन वापस किया गया।)

***अध्यक्ष:** इसके बाद मैं खंड (1) के संशोधनों को लेता हूं। पहला संशोधन श्री कामत द्वारा पेश किया गया संशोधन संख्या 386 है। प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (1) में, 'property' शब्द के पश्चात् 'except in national interest and' शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** इसके पश्चात् श्री ब्रजेश्वर प्रसाद द्वारा पेश किया गया संशोधन संख्या 387 है। प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (1) में 'law' शब्द के स्थान में 'the President' शब्द रखा जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** इसके बाद प्रो. के.टी. शाह का संशोधन संख्या 388 है।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (1) के अन्त में यह परंतुक जोड़ दिया जाये:—

'Provided that no rights of absolute property shall be allowed to or recognised in any individual partnership firm, or joint stock company in any form of natural wealth, such as land, forests, mines and minerals, waters of rivers, lakes or seas surrounding the coasts of the Union; and that ultimate ownership in these forms

of natural wealth shall always be deemed to vest in and belong to the people of India collectively; and that they shall be owned, worked, managed or developed by collective enterprise only, eliminating altogether the profit motive from all such enterprise.' "

[परन्तु किसी व्यक्ति, साझे की फर्म, या संयुक्त श्रेष्ठि कंपनी के किसी प्रकार के प्राकृतिक धन जैसे भूमि, वन, खाने तथा खनिज पदार्थ, नदी, तालाब और संघ के समुद्रतट के चहुं ओर समुद्र के जल पर निरपेक्ष संपत्ति के अधिकार न होने दिये जायेंगे और न अभिज्ञात किये जायेंगे; और इस प्रकार के प्राकृतिक धन का पूर्ण स्वामित्व भारत की जनता में सामुहिक रूप से निहित रहने दिया जायेगा और केवल सामुहिक उद्यम द्वारा ही, इन सब उद्यमों में लाभ की भावना का पूर्ण रूप से परित्याग कर, इन पर कब्जा या उनका संचालन या प्रबंधन या उनमें विकास किया जायेगा।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** इसके बाद हम उस संशोधन पर आते हैं जिसमें (2) से लेकर (6) तक के सब खंड आ जाते हैं। मैं उनको पृथक्-पृथक् करके भी लूंगा, पर इस समय मैं संख्या 389 को लेता हूं जिसमें इन सब पांच खंडों के अपमार्जन का प्रयास किया गया है।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के (2), (3), (4), (5) और (6) खंडों को अपमार्जित किया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** इसके बाद मैं खंड (2) पर आता हूं। इस खंड पर कई संशोधन हैं मैं प्रो. के.टी. शाह के संशोधन संख्या 394 को लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में—

(1) 'No property' शब्द के स्थान में 'Any property' शब्द रखे जायें।

(2) 'shall be taken' शब्दों के स्थान में 'may be taken' शब्द रख दिये जायें।

(3) 'unless the law provides for compensation' शब्दों के स्थान में 'subject to such compensation, if any' शब्द रखे जायें।

[अध्यक्ष]

(4) 'acquired and either fixes the amount of the compensation, or specifies the principles on which, and the manner in which, the compensation is to be determined' शब्दों के स्थान में 'acquired as may be determined by the principles laid down in the law for calculating the compensation' शब्द रखे जायें।

(5) अन्त में यह जोड़ दिया जाये:

"Provided that no compensation whatsoever shall be payable in respect of:—

(a) any public utility, social service, or civic amenity which has been owned, worked, managed or controlled, by an individual, partnership firm, or joint stock company for more than 20 years continuously immediately before the day this Constitution comes into force;

(b) any agricultural land forming part of the proprietory of any land-owner, howsoever described, which has remained uncultivated ro undeveloped continuously for ten years or more immediately before the day this Constitution comes into force;

(c) any urban land, forming part of the proprietory of any individual, purtnership firm or joint stock company, which has remained unbuilt upon or undeveloped in any way for fifteen years or more continuously immediately before the day this Constitution comes into effect;

(d) any agricultural land forming part of the proprietory of any land-owner, howsoever described, which has remained in the ownership or possession of the same land-owner or his family for more than 25 years continuously immediately before the date when this Constitution comes into operation;

(e) any mine, forest or mining or forest concessaion which has remained in the ownership or possession of the same individual, partnership firm, or joint stock company for at least twenty years immediately before the day this Constitution comes into operation;

(f) any share, stock, bond, debenture or mortgage on any joint stock company, owning, working, managing or controlling any industrial or commercial undertaking which has been owned, worked, controlled or managed by the same joint stock company or any combination or amalgamation of it with any other company for more than thirty years continuously immediately before the day this Constitution comes into operation:

or

which has paid in the course of its operations and existence in the aggregate in the shape of dividend or interest, a sum equal to or exceeding twice the paid-up value of its shares, stock, bonds or debentures;

or

whose total assets (not including goodwill) at the time of the acquisition by the State of any such undertaking are less in value than its total liabilities."

[परन्तु–

(क) किसी लोक उपदेयता, सामाजिक सेवा या नागरिक सुविधा जिस पर किसी व्यक्ति, साझे की फर्म या संयुक्त श्रेष्ठि कंपनी का इस संविधान के प्रवर्त्तन में आने के दिन से संघ पूर्व 20 वर्ष से अधिक काल से स्वामित्व, संचालन, प्रबंधन या नियंत्रण है;

(ख) कोई कृष्य भूमि जो किसी जमींदार की संपत्ति का कोई भाग हो और जो इस संविधान के प्रवर्त्तन में आने के दिन से सद्यपूर्व 10 वर्ष इतने अधिक समय अनजुती तथा अविकसित रूप में पड़ी रही हो;

[अध्यक्ष]

(ग) कोई नगर में की भूमि जिस पर किसी व्यक्ति, साझे की फर्म या संयुक्त श्रेष्ठि कंपनी का अधिकार हो और जो इस संविधान के प्रवर्त्तन में आने के दिन से सद्यपूर्व लगातार 15 वर्ष या इससे अधिक समय तक अनिर्मित तथा अविकसित पड़ी रही हो;

(घ) कोई कृष्य भूमि जो किसी जमींदार की संपत्ति का कोई भाग हो और जो इस संविधान के प्रवर्त्तन में आने के दिन से सद्यपूर्व लगातार 25 वर्ष से अधिक समय तक उसी व्यक्ति या उसके कुटुम्ब के कब्जे में रही हो;

(ङ) कोई खान, वन या खनिज पदार्थ निकालने का फर्म या वन संबंधी रियायतें जो उसी व्यक्ति, साझे की फर्म, संयुक्त श्रेष्ठि कंपनी के स्वामित्व या कब्जे में इस संविधान के प्रवर्त्तन में आने के दिन से सद्यपूर्व न्यूनातिन्यून 20 वर्ष तक रही हो;

(च) किसी संयुक्त श्रेष्ठि कंपनी में, जो किसी ऐसे औद्योगिक या वाणिज्यिक उपक्रम की स्वामिनी, संचालिका, प्रबंधिका या नियंत्रिका है, कोई अंश, श्रेष्ठि, हुंडी, ऋणपत्र या रहन जिस उपक्रम पर उसी संयुक्त श्रेष्ठि कंपनी का या किसी अन्य कंपनी से मिलकर या उसमें विलीन होकर उनका स्वामित्व, संचालन, नियंत्रण या प्रबन्धन इस संविधान के प्रवर्त्तन में आने के दिन से सद्यपूर्व लगातार तीस वर्ष से अधिक काल तक रहा हो;

या

जो अपने प्रवर्त्तन तथा जीवन काल में लाभांश या ब्याज के रूप में अंश, श्रेष्ठि, हुंडी या ऋणपत्र के प्राप्त हुए भाग से औसतन दुगना दे चुकी हो;

या

किसी उपक्रम को राज्य द्वारा अर्जित करते समय उसकी सकल संपत्ति उसको पूर्ण देयता से मूल्य में कम हो तो इन पर कोई प्रतिकर नहीं दिया जायेगा।

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** इसके बाद श्री कामत का संशोधन संख्या 395।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में दूसरी बार आए हुए शब्द 'taken possession of or acquired' के स्थान में 'to be taken possession of or acquired' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** श्री बी. दास द्वारा पेश किया गया संशोधन सं. 397।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में 'unless the law provides for compensation' शब्दों के स्थान में 'unless the law provides for fair and equitable compensation' शब्द रखे जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** इसके बाद श्री नागप्पा द्वारा पेश किया गया संशोधन संख्या 400।

***श्री एस. नागप्पा** (मद्रास : जनरल): श्रीमान, मैं अपने संशोधन को वापस लेना चाहता हूं।

सभा की अनुमति से संशोधन सं. 400 वापस किया गया।

***अध्यक्ष:** इसके पश्चात् संख्या 402। प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में–

'principal' शब्द के पूर्व 'appropriate' शब्द जोड़ दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** श्री कामत द्वारा पेश किया गया संशोधन सं. 403।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन सं. 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में 'to be determined' शब्दों के पश्चात् एक अर्द्ध-विराम और 'provided that such principles or such manner of determination of compensation shall not be called in question in any court' शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** डॉ. देशमुख द्वारा पेश किया गया संशोधन संख्या 404।

प्रश्न यह है:

"सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन सं. 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में 'the compensation is to be determined' शब्दों के पश्चात्

[अध्यक्ष]

'and paid' शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** इसके बाद संशोधन संख्या 405 आता है जिसे श्री मुंशी ने स्वीकार कर लिया है।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में 'the compensation is to be determined' शब्दों के पश्चात् 'and given' शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) के पश्चात् निम्न परन्तुक जोड़ दिया जाये:

'Provided that when any such law provides the acquisition by any State of the interests of the Zamindars of various degrees and other intermediaries for the purpose of abolishing Zamindari system, it shall be sufficient if the law provides for the payment of compensation amounting to not less than twelve times the estimated average net income of the Zamindar of any degree or intermediary whose interests are to be acquired.'"

[परन्तु जब कोई विधि जमींदारी प्रथा का उन्मूलन करने के प्रयोजन के लिए भिन्न-भिन्न कोटि के जमींदारों तथा अन्य मध्यवर्त्तियों के हितों का किसी राज्य द्वारा अर्जित किये जाने का उपबंध करती है तो यदि वह विधि किसी कोटि के जमींदार या मध्यवर्ती की, जिनके हित अर्जित किये जा रहे हैं, अनुमानित औसत शुद्ध आय के बारह गुने से अन्यून राशि का प्रतिकर देने का उपबंध करती है तो यह पर्याप्त होगा।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***श्री फूल सिंह** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान, मैं अपने संशोधन संख्या 475 को वापस लेना चाहूंगा।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस किया गया।

***श्री गुप्तनाथ सिंह** (बिहार : जनरल): श्रीमान, मैं अपने संशोधन संख्या 476 को वापस लेना चाहूंगा।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में 'provides for compensation' शब्दों के स्थान में 'provides for fair and equitable compensation based on market value' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में 'unless the law provides for compensation for the property taken posession of or acquired and either fixes the amount of the compensation, or specifies the principles on which, and the manner in which, the compensation is to be determined' शब्दों के स्थान में 'unless due compensation is paid for' अथवा विकल्पत: 'unless the law provides for due compensation' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): श्रीमान, मैं अपने संशोधन को वापस लेना चाहता हूं।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस किया गया।

***श्री बी.पी. झुनझुनवाला** (बिहार : जनरल): श्रीमान, मैं अपना संशोधन वापस लेना चाहता हूं:

सभा की अनुमति से संशोधन वापस किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में 'or specifies the' शब्दों के पश्चात् 'proper' या विकल्पत: 'fair' शब्द प्रतिष्ट किया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) के अन्त में यह नया परंतुक जोड़ दिया जाये:–

'Provided that no compensation shall be payable to any owner or holder of any movable or immovable property, who, having owned or held such property for thirty years continuously immediately before the coming into force of this Constitution, has either not habitually resided within the State where such property is situated or has not done anything to develop such property.' "

[परन्तु स्थावर या जंगम संपत्ति के किसी ऐसे स्वामी या धारण करने वाले को कोई प्रतिकर नहीं दिया जायेगा जो इस संविधान के प्रवर्त्तन में आने से सद्यपूर्व उस संपत्ति पर लगातार तीस वर्ष तक कब्जा करते हुए या उसको धारण करते हुए उस राज्य में स्थायी रूप से निवास न करता हो या उस संपत्ति की उन्नति के लिए उसने कुछ भी न किया हो।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (3) को अपमार्जित किया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (3) के स्थान में यह खंड रखा जाये:—

'(3) No such law as is referred to in clause (2) of this article made by the Legislature of the State shall have

effect, unless such law receives the assent of the President.' "

[(3) राज्य के विधान-मंडल द्वारा बनाई गई कोई ऐसी विधि, जैसी कि खंड (2) में निर्दिष्ट है, तब तक प्रभावी न होगी जब तक कि ऐसी विधि को राष्ट्रपति की अनुमति न मिल गई हो।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (3) में 'unless such law having been reserved for the consideration of the President has received his assent' शब्दों के स्थान में 'has received the assent of the President' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (3) में 'having been' शब्दों के स्थन में 'is' शब्द रखा जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (4) के स्थान में यह खंड रखा जाये:—

'(4) Any Bill pending before the Legislature of a State at the commencement of this Constitution shall not, after its subsequent enactment, be called into question in any Court on the ground that it contravenes the provisions of clause (2) of this article.' "

[(4) इस संविधान में प्रारम्भ पर राज्य के विधान-मंडल में लम्बित किसी विधेयक पर उसके बाद में अधिनियम बन जाने पर किसी न्यायालय में इस बात पर आपत्ति नहीं की जायेगी कि वह इस अनुच्छेद के खंड (2) के उपबन्धों का उल्लंघन करता है।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (4) में—

(1) 'If any' शब्द के स्थान में 'any' शब्द रखा जाये।

(2) 'has after it has been' शब्दों के स्थान में 'may be' शब्द रखे जायें।

(3) 'received the assent of the President' शब्दों को अपमार्जित किया जाये।

(4) 'assented to' शब्दों के स्थान में 'passed' शब्द रखा जाये।

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (4) में 'Constitution' शब्द के पश्चात् 'and designed to execute a scheme of agrarian reform by abolition of Zamindari and conferring rights of ownership on peasant proprietors for such compensation as the Legislature of the State considers fair' शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (4) के स्थान में यह खंड रखा जाये:—

'(4) No law making provision as aforesaid shall be called in question in any court either on the ground that the compensation provided for is inadequate or that the principles and the manner of compensation specified are fraudulent and inequitous.'

[(4) उपरोक्त किसी भी उपबंध बनाने की विधि पर किसी न्यायालय में, इस आधार पर कि किस प्रतिकर का उपबंध किया गया है वह अपर्याप्त है या प्रतिकर के उल्लिखित सिद्धान्त और रीति में धोखा है या वे न्यायोचित नहीं हैं, आपत्ति नहीं की जायेगी।]"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (4) के अन्त में यह व्याख्या जोड़ दी जाये:—

'Explanation.—The provisions of this clause shall not refer to the system of land tenure called Ryotwari any where in the Union including the Indian States.' "

[*व्याख्या*—इस खंड के उपबंध देशी राज्यों के सहित संघ में कहीं भी रैयतदारी के नाम की भूमि लगानदारी की प्रणाली को निर्दिष्ट नहीं करेंगे।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (5) के स्थान में यह खंड रखा जाये:—

'(5) Save as provided in the next succeeding clause, nothing in clause (2) of this article shall affect the provisions of any existing law or of any law which the State may hereafter make which imposes or levies any tax or penalty which seeks to promote public health or to prevent danger to life and property.' "

[(5) आगामी अनुवर्ती खंड में उपबंधित रीति के अतिरिक्त इस अनुच्छेद के खंड (2) की किसी बात का वर्तमान विधियों के या किसी उस विधि के उपबंधों पर जिसे संसद एतत्पश्चात् बनाये और जो किसी ऐसे कर या शक्ति का आरोपण या उद्ग्रहण करती हो जिसमें लोक स्वास्थ्य की उन्नति का या जीवन संकट तथा संपत्ति संकट से बचने का प्रयास हो, कोई प्रभाव नहीं होगा।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (5) के उपखंड (ख) में 'property' शब्द के पश्चात् 'or for ensuring full employment to all and securing a gust and equitable economic and social order' शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (5) को अपमार्जित किया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (5) में से 'save as provided in the next succeeding clause' शब्दों को निकाल दिया जाये।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (5) के उपखंड (क) के स्थान में यह उपखंड रखा जाये।

(a) the provisions of any existing law other than a law to which the provisions of clause (6) of this article apply, or

[(क) उस विधि के अतिरिक्त किसी अन्य वर्तमान विधि के उपबन्ध जिस पर इस अनुच्छेद के खण्ड (6) के उपबन्ध लागू होते हैं, अथवा]

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (5) के उपखंड (क) को अपमार्जित किया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** ये दो संशोधन नये रूप में रखे गये हैं। प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के उपखंड (ख) के पश्चात् यह नया खंड जोड़ दिया जाये:

'(c) The provisions of any existing law made or of any law which the State may hereafter make, in pursuance of any agreement arrived at with a foreign State or otherwise with respect to property declared by law to be evacuee property.' "

[(ग) किसी विदेशी राज्य से अथवा अन्यथा किये गये करार के पालनार्थ विधि द्वारा विस्थापित संपत्ति घोषित की गई संपत्ति के बारे में निर्मित किसी वर्तमान विधि या एतत्पश्चात् बनाई जाने वाली किसी विधि के उपबन्ध।]

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (6) में 'not more than one year' शब्दों के स्थान में 'at any time' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (6) में 'not more than one year before the commencement of this Constitution' शब्दों के स्थान में 'after August 15, 1947' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (6) में 'one year' शब्दों के स्थान में 'eighteen months' शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (6) में 'may within three month' से लेकर 'Government of India Act, 1935' तक के शब्दों के स्थान में यह रख दिया जाये:–

'shall not be called in question in any court on the ground that it contravenes any provision of this article.' "

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (6) में से 'may within three months from such commencement be submitted by the Governor of the State to the President for his certification; and thereupon, if the President by public notification so certifies it' शब्द अपमार्जित किये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (6) में से 'clause (2) of this article' शब्द, अंक और कोष्ठक अपमार्जित किये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (6) को अपमार्जित किया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (6) के पश्चात् यह नया खंड जोड़ दिया जाये:

'(7) If any State passes a law designed to execute a scheme of agrarian reform in the State by abolition of Zamindari conferring rights of ownership on peasant proprietors or at least rights of occupancy for such compensation as the State Legislature considers fair on the lines of the law referred to in clause (4) of this article such law shall be submitted by the Governor or the Ruler as the case may be, to the President for his certification. If the President by public notification certifies the law, it shall not be called in question

in any court on the ground that it contravenes the provisions of clause (2) of this article.' "

[(7) जमींदारी का उन्मूलन कर किसानों को स्वामित्व का अधिकार देकर या किसी ऐसे प्रतिकर के लिये उनका कब्जा रखने का कम से कम अधिकार देकर, जिसे इस अनुच्छेद के खंड (4) निर्दिष्ट विधि के आधार पर राज्य विधान-मंडल ठीक समझे, यदि कोई राज्य अपने यहां कृषि सुधार की योजना प्रवृत्त करने के लिये विधि पारित करता है तो इस विधि को प्रमाणन के लिए राष्ट्रपति के पास यथास्थिति राज्यपाल या शासक द्वारा भेजा जायेगा। यदि लोक अधिसूचना द्वारा राष्ट्रपति उस विधि को प्रमाणित कर देता है तो उस विधि पर किसी न्यायालय में इस आधार पर आपत्ति नहीं की जायेगी कि वह इस अनुच्छेद के खंड (2) के उपखंड का उल्लंघन करती है।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (6) के पश्चात् यह खंड जोड़ दिया जाये:

'(7) The Parliament may by law in case the social and economic conditions so necessitate, provide for the socialization of any class of property on such terms and conditions as provided in the law.' "

[(7) यदि सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के अनुसार आवश्यक है तो संसद विधि द्वारा ऐसे निबन्धनों और शर्तों पर संपत्ति की किसी श्रेणी का समाजीकरण करने के लिये उपबन्ध करेगी जैसी उस विधि में उपबन्धित हों।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 के निर्देशानुसार प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के पश्चात् यह नया अनुच्छेद जोड़ दिया जाये:

'24-A. Nothing in this Constitution shall prevent the Parliament from exercising jurisdiction over and, the State Legislature from

[अध्यक्ष]

acquiring any properties movable or immovable belonging to any public charitable trust without compensation and for the purpose of better utilization and management of the trust property.' "

[24क. इस संविधान की किसी बात से किसी स्थावर या जंगम संपत्ति पर जो किसी लोक पूर्त्त न्यास की हो बिना प्रतिकर के तथा न्यास संपत्ति के अधिक अच्छे उपयोग तथा प्रबन्धन के प्रयोजन के लिये संसद को क्षेत्राधिकार के प्रयोग करने में और विधान-मंडल के उस संपत्ति के अर्जन करने में कोई बाधा नहीं होगी।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं प्रधान मंत्री द्वारा पेश किये गये सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के मूल संशोधन संख्या 369 के स्वीकृत संशोधनों द्वारा संशोधित रूप पर मत लेता हूं। प्रश्न यह है :

"कि संशोधित रूप में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 स्वीकार किया जाये।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 24 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

इसके बाद दोपहर बाद के चार बजे तक के लिए सभा स्थगित हुई।

संविधान सभा दोपहर के बाद चार बजे अध्यक्ष महोदय माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में पुनर्समवेत हुई।

संविधान का मसौदा—*जारी*

अनुच्छेद 14-क—भाषा

***अध्यक्ष:** अब हमें भाषा सम्बन्धी अनुच्छेदों को लेना है। मैं जानता हूं कि यह एक ऐसा विषय है जो कुछ समय से सदस्यों के विचारों में आन्दोलन पैदा करता रहा है; इस कारण इस वाद-विवाद में जो वक्ता भाग लेंगे उनसे मैं एक निवेदन करूंगा। मेरा निवेदन किसी विशिष्ट प्रस्थापना के पक्ष में नहीं है वरन् वह उन भाषणों के प्रकार के सम्बन्ध में है जो सदस्यों द्वारा दिये जायेंगे। हम यह न भूल जायें कि भाषा के प्रश्न पर जो कुछ भी विनिश्चय किया जाता है उसका पालन समूचे देश द्वारा किया जायेगा। देश के समूचे संविधान में ऐसा अन्य कोई पद नहीं है जिसका वास्तविक व्यवहार द्वारा प्रति दिन, प्रति घंटा और मैं तो यहां तक कहूंगा कि प्रति क्षण पालन किया जाना अपेक्षित हो। अत: सदस्यों को यह याद रखना होगा कि इस सभा में वाद-विवाद द्वारा किसी बात में सफलता प्राप्त करने से कोई लाभ नहीं होगा। इस सभा का विनिश्चय समूचे देश को मान्य होना चाहिये। यदि हम किसी विशिष्ट प्रस्थापना को बहुमत द्वारा पार करने में सफल हो भी गये परन्तु यदि वह देश की जनता के किसी विशेष वर्ग को स्वीकार न हुआ चाहे वह वर्ग उत्तर देश का हो या दक्षिण देश का हो तो इस संविधान का पालन करना एक बहुत ही कठिन कार्य हो जायेगा। अत: इस भाषा सम्बन्धी प्रश्न पर जब कोई सदस्य भाषण देने के लिये खड़ा हो तो मैं उनसे यह याद रखने के लिए अति गम्भीर निवेदन करूंगा कि वे एक भी शब्द या पद ऐसा न निकालें जिससे दु:ख हो। जो कुछ कहा जाये वह संयत भाषा में कहा जाये जिससे कि वह तर्कयुक्त प्रतीत हो और ऐसे विषय में आवेश उत्पन्न करने या भावनाओं को उत्तेजित करने के लिये कोई अपील नहीं होनी चाहिये।

इसके बाद जिस प्रक्रिया का मैं पालन करना चाहता हूं उसके बारे में मैं कुछ कहना चाहता हूं जिससे कि उस प्रक्रिया के लिए मुझे सभा की अनुमति प्राप्त हो जाये।

मैंने देखा है कि इन अनुच्छेदों पर लगभग तीन सौ या इससे भी अधिक संशोधन हैं। यदि प्रत्येक संशोधन को पेश किया जाये और यदि प्रत्येक संशोधन पेश करने वाले को भाषण देने के लिये मैं दस मिनट दूं तो मैं नहीं जानता हूं कि इसमें कितने घंटे लग जायेंगे। बहुत से संशोधन एक दूसरे से मिलते-जुलते हैं, बहुतों के अर्थ में केवल नाममात्र का अन्तर है बहुत से ऐसे हैं जिनके कारण सिवा शब्दों के और कुछ अन्तर व्यवहार्यत: नहीं होता है। हां कुछ अवश्य ऐसे हैं जो सारवत् हैं। अत: मैं समस्त संशोधनों को पेश किये गये रूप में मान लेने का

[अध्यक्ष]

प्रस्ताव रखता हूं और सदस्यों से निवेदन करता हूं कि वे सीधे वाद-विवाद आरम्भ कर दें। प्रत्येक सदस्य जो भाषण देना चाहता है उसे अपने संशोधन पर बोलने की स्वतन्त्रता है। पर उसे यह स्मरण रखना चाहिये कि वह अपने भाषण में दस मिनट या अधिक से अधिक पन्द्रह मिनट ही लगायें। यदि वह सब संशोधनों या समस्त उत्पन्न हुई प्रस्थापनाओं को लेना चाहता है तो शायद जिस विशिष्ट प्रस्थापना को वह महत्व देता है उसका पूर्ण विवरण करने के लिए उसके पास समय नहीं रहेगा। अत: यह स्वाभाविक है कि इस समय-सीमा का पालन करने में सदस्यों को उन्हीं खास बातों पर ध्यान रखना पड़ेगा जिसको वह महत्व देना चाहते हैं। यदि सभा सहयोग देती है और यदि सदस्य सहयोग देते हैं तो फिर ऐसा कोई कारण नहीं है, कि जैसे हमने शेष संविधान को युक्तियुक्त समय में समाप्त किया है उसी प्रकार हम इस प्रश्न के वाद-विवाद को युक्तियुक्त समय में समाप्त न कर पायें। मैं यह जानना चाहूंगा कि क्या सभा उस प्रक्रिया को स्वीकार करती है जिसका मैं पालन करना चाहता हूं।

***माननीय सदस्यगण:** जी हां।

***श्री महावीर त्यागी:** श्रीमान, यह जो प्रक्रिया सुझाई गई है, उसे मैं स्वीकार नहीं करता हूं, यदि सब संशोधनों पर वाद-विवाद होने दिया जायेगा तो कोई भी यह ठीक-ठीक नहीं समझ पायेगा कि किसी विशिष्ट संशोधन का क्या महत्व है तथा संशोधन पर संशोधन का क्या अर्थ है। अत: यदि आपकी सुझाई गई प्रक्रिया का पालन किया जाता है तो सभा को वाद-विवाद का पूरा-पूरा लाभ नहीं होगा। अत: मैं सुझाव देता हूं कि आप इन संशोधनों की सूचियों की मुख्य-मुख्य बातों को पेश किया हुआ मान लें और उन पर सभा का विनिश्चय ले लें जिससे कि इन विनिश्चयों को बाद में मसौदा-समिति द्वारा शामिल कर दिया जाये। यदि ऐसा नहीं किया जायेगा और यदि अंक इत्यादिकों के विषय पर एक साथ वाद-विवाद किया जायेगा, तो कोई यह नहीं समझ सकेगा कि उसे क्या कहना है। अत: मैं निवेदन करता हूं कि यह सुझाई गई प्रक्रिया ठीक नहीं होगी।

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि सदस्यों ने संशोधन पढ़ लिये हैं और उनका महत्व समझ लिया है। (कई माननीय सदस्य: जी हां) इस आधार पर मैंने यह सुझाव सभा के समक्ष रखा है।

***मौलाना हसरत मोहानी:** क्या मैं यह सुझाव रख सकता हूं कि डॉ. अम्बेडकर का सरकारी संशोधन और दो और पेश कर दिये जायें और इसके बाद एक-एक करके सब पेश कर दिये जायें। वे महत्व के संशोधन नहीं रहे हैं। अत: यदि आप डॉ. अम्बेडकर और उनके साथियों से यह कहें कि वे अपने संशोधन पेश करें ओर उसके बाद उनके संशोधनों पर संशोधन पेश होने दिये जायें, ऐसा करने से माननीय सदस्यों को अपने विचार प्रकट करने का अवसर मिल जायेगा।

***अध्यक्षः** सदस्यों को यह कहने का अधिकार है कि वे किसी विशिष्ट संशोधन को पेश करना नहीं चाहते हैं। अन्यथा मैं सब संशोधनों को पेश किया हुआ समझूंगा। अब हम वाद-विवाद आरम्भ करें।

***मौलाना हसरत मोहानीः** डॉ अम्बेडकर द्वारा प्रस्थापित संशोधन पर मैंने संशोधन प्रस्थापित किया है। यदि वे यह कह दें कि वे अपना संशोधन पेश करना नहीं चाहते हैं.....।

***अध्यक्षः** आपका संशोधन पेश किया हुआ माना जायेगा।

***सेठ गोविन्द दास** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल) : मैं यह जानना चाहूंगा कि इस बात को ध्यान में रखते हुए कि आपने कहा है कि सब संशोधनों को पेश किया हुआ समझा जायेगा, वाद-विवाद सब संशोधनों पर किया जायेगा या प्रत्येक प्रश्न पर।

***अध्यक्षः** मैं उसी प्रक्रिया का पालन करूंगा जिसका मैंने आज पहले एक अन्य प्रस्थापना के सम्बन्ध में पालन किया था जिस पर हमारे पास कई संशोधन आये थे। पहले मैं उन संशोधनों को लूंगा जिनके अन्तर्गत समस्त बातें आ जाती हैं और उनके समाप्त हो जाने के बाद मैं एक-एक कंडिका को लूंगा, यदि सदस्य इस प्रकार से उन पर विवाद करना चाहेंगे।

***पं. बालकृष्ण शर्माः** आपने यह कहा था कि हम सब संशोधनों को पेश किया हुआ समझेंगे। वह क्रम क्या होगा जिसके अनुसार आप सदस्यों को भाषण देने के लिये बुलायेंगे?

***अध्यक्षः** वही क्रम जिसका सामान्यतया सभा का कोई अध्यक्ष पालन करता है।

***माननीय पं. रविशंकर शुक्ल** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): वाद-विवाद के लिये क्या हम संशोधनों को एक-एक करके लेंगे। या हम उन सबको इकट्ठा लेंगे?

***अध्यक्षः** सबको इकट्ठा।

***माननीय पं. रविशंकर शुक्लः** यदि हम संशोधनों को एक-एक करके लें तो हम प्रत्येक विषय पर एकाग्रचित्त होकर विचार कर सकेंगे। अन्यथा इतनी अधिक गड़बड़ी फैलेगी कि आप स्वयं वक्ताओं का क्रम नियत नहीं कर सकेंगे।

***अध्यक्षः** इसी कारण मैंने यह सुझाव दिया था कि भाषण देते समय सदस्य उसी विशेष बात पर जोर दें जिसको वे महत्व देते हैं।

***श्री मुहम्मद इस्माइल साहिब** (मद्रास : मुस्लिम): अभी तक कुछ संशोधन आ रहे हैं; क्या हम यह समझें कि इन सबको पेश किया हुआ माना जायेगा?

***अध्यक्ष:** इस क्षण तक जो संशोधन मुझे प्राप्त हुये हैं उन सबको। उनको आज शाम तक घुमा दिया जायेगा।

***पं. बालकृष्ण शर्मा:** क्या आपके लिये यह संभव होगा कि आप अनुच्छेद को एक-एक करके ले सकें?

***अध्यक्ष:** मत लेते समय।

***पं. बालकृष्ण शर्मा:** हम अनुच्छेदों को एक-एक करके ले सकते हैं और उस समय उसी अनुच्छेद पर वाद-विवाद सीमित रखा जायेगा; इसके बाद दूसरा अनुच्छेद लिया जा सकता है, इस प्रकार यदि एक ही सदस्य उस अनुच्छेद पर बोलना चाहता है तो वह बोल सकता है।

***अध्यक्ष:** मैं इसे पसन्द नहीं करता, पर हां, सभा को इस बात का अधिकार है।

***एक माननीय सदस्य:** क्या प्रत्येक सदस्य को जिसने संशोधन पेश किया है उसे बोलने का अधिकार होगा?

***अध्यक्ष:** अभी मैं कुछ नहीं कह सकता हूं। मैंने अभी उन सदस्यों की गणना नहीं की है जिन्होंने संशोधन पेश किये हैं। पर संशोधन पेश करने वाले प्रत्येक सदस्य को मैं अवसर देने का प्रयत्न करूंगा।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): उन सदस्यों के लिए क्या है जिन्होंने संशोधन पेश नहीं किये हैं? क्या उनको भी बोलने का अधिकार होगा?

***अध्यक्ष:** मैं प्रत्येक सदस्य को बोलने का अवसर देने का प्रयत्न करूंगा।

***श्री जसपतराय कपूर:** श्रीमान, आपने जो यह सुझाव दिया है उसके अनुसार सब संशोधन पेश किये हुए समझे जायेंगे। श्रीमान, क्या मैं यह निवेदन कर सकता हूं कि यह पूरा अध्याय भाषा के सम्बन्ध का है। अब तक इस सभा में इस प्रथा का पालन होता रहा है कि जब किसी विशिष्ट अध्याय पर विचार किया जाता है तो प्रत्येक अनुच्छेद को अलग-अलग लिया जाता हे। इस अध्याय में अनुच्छेद पूर्णतया भिन्न-भिन्न विषयों पर हैं। कोई अनुच्छेद अंक सम्बन्धी है तो कोई उच्च न्यायालयों तथा सर्वोच्च न्यायालय की भाषा के सम्बन्ध में है और एक अनुच्छेद उस भाषा के सम्बन्ध का है जिसका राज्यों में परस्पर संचार में प्रयोग होगा। ये सब अनुच्छेद पूर्णतया भिन्न-भिन्न विषयों से सम्बन्ध रखते हैं, अत: मैं यह निवेदन करूंगा कि प्रक्रिया में जिस अन्तर का आपने सुझाव दिया है वह

माना जाये पर जहां तक प्रत्येक अनुच्छेद का सम्बन्ध है जिस प्रक्रिया का अब तक पालन किया गया है उसी का पालन किया जाये। अन्यथा गड़बड़ हो जायेगी।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** संविधान निर्माण के इस अन्तिम समय में यह परिवर्तन क्यों किया जाये?

***अध्यक्ष:** क्योंकि यह अन्तिम समय है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** तो समय-सीमा कुछ बढ़ा दी जाये।

***अध्यक्ष:** इस विषय पर पुन: विचार करने के लिये मैं तैयार हूं दस मिनट की जगह मैं कुछ और समय दे सकूंगा।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं चाहता हूं कि प्रत्येक सदस्य विषय से संगत रहे।

***अध्यक्ष:** ठीक यही कठिनाई है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैंने कुछ संशोधन पेश किये हैं। श्रीमान, यदि किसी समय मैं विषय से संगत न रहूं तो आप मुझे रोक सकते हैं।

***माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू:** आपने यह आदेश दे दिया है कि जिन संशोधनों की सूचना दी जा चुकी है उन सबको पेश किया हुआ समझा जायेगा। अनुमानत: लगभग दो सौ या तीन सौ संशोधन हैं। मेरा ख्याल है कि उनमें से कुछ एक-दूसरे से मिले जुले हैं और कुछ असामयिक हैं। यदि हम उन सबको पेश किया हुआ समझ लेंगे तो उसमें बहुत समय लगेगा। मैं केवल यह सुझाव दे रहा हूं कि जो सदस्य अपने संशोधन वापस करना चाहते हैं वे आपको लिखित सूचना देकर वापस कर सकते हैं।

***अध्यक्ष:** मैं इससे भी कुछ और आगे बढ़ने के लिए तैयार हूं। मैं प्रत्येक संशोधन को पुकारूंगा और तत्सम्बन्धी सदस्य यह कह सकता है कि वह उसे पेश करना चाहता है या नहीं।

***श्री देशबन्धु गुप्त** (दिल्ली): चूंकि मसौदा-समिति इस विषय पर एकमत होकर कोई संशोधन पेश नहीं कर सकी है मैं इतनी अबेर होने पर भी यह सुझाव रखता हूं कि इस समूचे प्रश्न पर एक बार और विचार करने के लिये नौ या ग्यारह सदस्यों की एक समिति नियुक्त कर दी जाये और वह समिति कोई एक स्वीकृत संशोधन प्रस्तुत करने का प्रयास करे।

***एक माननीय सदस्य:** जी हां।

***श्री देशबन्धु गुप्त:** वैसा कोई संशोधन वाद-विवाद का आधार हो सकता है और मतभेद कम किया जा सकता है। श्रीमान, आपकी अनुमति से मैं यह सुझाव देता हूं कि ये सदस्य उस समिति में हों। माननीय पंडित जवाहरलाल नेहरू.....।

***एक माननीय सदस्यः** जी नहीं, हम इस विचार से सहमत नहीं हैं।

***अध्यक्षः** मैं नहीं समझता हूं कि वह व्यवहारणीय है। मैं समझता हूं कि इसी प्रक्रिया का पालन किया गया है। इससे कोई अन्तर नहीं होता है।

***श्री देशबन्धु गुप्तः** यदि हमें कोई मान्य हल मिल सकता है तो उससे समय बच जायेगा और परेशानी से बच जायेंगे।

***अध्यक्षः** इससे कोई अन्तर न होगा। मैं समझता हूं कि यदि इस वाद-विवाद को समाप्त कर दिया जाये तो अच्छा है।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान, क्या मैं आपका यह आदेश प्राप्त कर सकता हूं कि अब तक जो संशोधन पेश हो चुके हैं वे ही केवल रहेंगे और आगे संशोधन स्वीकार नहीं किये जायेंगे जिससे कि सभा को समय तथा खर्चे की बचत हो।

***अध्यक्षः** इस विषय पर अब मत लिया जायेगा। प्रश्न यह है:

"कि जिस प्रक्रिया का मैंने सुझाव दिया है उसे सामान्यतया स्वीकार किया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** अब मैं एक-एक करके संशोधन को पुकारूंगा।

संशोधन संख्या 65।

***श्री एस.वी. कृष्णमूर्ति राव** (मैसूर राज्य): श्रीमान, मैंने एक संशोधन भेजा है कि भाषा के विषय को भावी संसद पर छोड़ दिया जाये। यदि यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो यह सब वाद-विवाद मिट सकता है।

***अध्यक्षः** ऐसे अन्य कई संशोधन हैं जिनको यदि स्वीकार कर लिया जाये तो शेष सब संशोधन महत्वहीन हो जाते हैं और क्षेत्र से बाहर हो जाते हैं। अब मैं प्रत्येक संशोधन को पुकारूंगा और यदि कोई सदस्य अपना संशोधन वापस लेना चाहता है तो वह मुझे बता दे।

(जिन सदस्यों ने संशोधन संख्या 65 और 66 की सूचना दी थी उन्होंने यह संकेत किया कि उनके संशोधन पेश किये हुए समझे जायें।)

संशोधन संख्या 67।

***माननीय पं. रविशंकर शुक्लः** श्रीमान, में प्रत्येक पद को अलग-अलग पेश करना चाहता हूं।

***अध्यक्षः** इस दृष्टिकोण से मत लेते समय प्रश्न होगा।

***माननीय पं. रविशंकर शुक्लः** जहां तक संशोधन संख्या 67 का सम्बन्ध है उसमें तीन संशोधन हैं। एक अनुच्छेद 99 और 184 को अपमार्जित करने के लिये है। उसे मैं पेश करना नहीं चाहता हूं। उसको छोड़ दिया जाये। संशोधन संख्या 67 के सम्बन्ध में मैंने प्रत्येक अनुच्छेद पर अलग-अलग संशोधन की सूचना दी है। मैं चाहता हूं कि उनको पेश किया हुआ समझा जाये न कि संशोधन संख्या 67 को। संशोधन संख्या 67 को पेश किया हुआ समझा जाये, और अन्य संशोधनों को पेश किया हुआ समझा जाये।

***अध्यक्षः** अन्य संशोधन कौन से हैं?

***माननीय पं रविशंकर शुक्लः** मैंने अपने नाम से प्रत्येक अनुच्छेद पर संशोधन भेजे हैं।

(जिन सदस्यों ने संशोधन संख्या 68 और 69 की सूचना दी थी उन्होंने संकेत किया कि उनके संशोधन पेश किये हुए समझे जायें।)

***माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्त** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान, संशोधन संख्या 69 के सम्बन्ध में मेरा एक औचित्य प्रश्न है। क्या मैं उसे इस समय प्रस्तुत करूं या मत लेते समय?

***अध्यक्षः** मत लेते समय।

(जिन सदस्यों ने संशोधन संख्या 70, 71 और 72 की सूचना दी थी उन्होंने संकेत किया कि उनके संशोधन पेश किये हुए समझे जायें।)

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं अपना संशोधन संख्या 73 पेश नहीं कर रहा हूं।

***श्री महावीर त्यागीः** श्रीमान, मैं उसे पेश करता हूं।

(जिन सदस्यों ने संशोधन संख्या 74, 75, 76, 77, 78, 79, 80, 81, 82, 83, 84 और 85 की सूचना दी थी उन्होंने संकेत किया कि उनके संशोधन पेश किये हुए समझे जायें।)

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** श्रीमान, यदि कोई संशोधन किसी दूसरे संशोधन से पूर्णतया समान है तो क्या उस समान संशोधन को कई सदस्यों द्वारा पेश करने दिया जायेगा?

***अध्यक्षः** मत लेते समय मैं उनको छोड़ दूंगा।

(जिन सदस्यों ने संशोधन संख्या 86, 87, 88, 89 और 90 की सूचना दी थी उन्होंने संकेत किया कि उनके संशोधन पेश किये हुए समझे जायें।)

(संशोधन संख्या 91 पेश नहीं किया गया।)

[अध्यक्ष]

(जिस सदस्य ने संशोधन संख्या 92 की सूचना दी थी उसने यह संकेत किया कि उसके संशोधन को पेश किया हुआ समझा जाये।)

(संशोधन संख्या 93 पेश नहीं किया गया।)

(जिन सदस्यों ने संशोधन संख्या 94, 95, 96, 97, 98, 99, 100, 101, 102, 103 और 104 की सूचना दी थी उन्होंने यह संकेत किया कि उनके संशोधन पेश किये हुये समझे जायें।)

***श्री महावीर त्यागी:** जो सदस्य अपने संशोधन पेश नहीं कर रहे हैं वे आपके पास एक परची भेज दें और इस प्रकार समय बच सकता है।

(जिस सदस्य ने संशोधन संख्या 105 की सूचना दी थी उसने संकेत किया कि उसका संशोधन पेश किया हुआ समझा जाये।)

(संशोधन संख्या 106 पेश नहीं किया गया।)

(जिन सदस्यों ने संशोधन संख्या 107, 108, 109 और 110 की सूचना दी थी उन्होंने संकेत किया कि उनके संशोधन पेश किये हुये समझे जायें।)

(संशोधन संख्या 111 और 112 पेश नहीं किये गये।)

(जिन सदस्यों ने संशोधन संख्या 113, 114, 115, 116 और 117 की सूचना दी थी उन्होंने यह संकेत किया कि उनके संशोधन पेश किये हुये समझे जायें।)

(संशोधन संख्या 118 पेश नहीं किया गया।)

(जिन सदस्यों ने संशोधन संख्या 119 और 120 की सूचना दी थी उन्होंने यह संकेत किया कि उनके संशोधन पेश किये हुये समझे जायें।)

***श्री एच.वी. कामत:** एक औचित्य प्रश्न है श्रीमान, क्या किसी सदस्य के लिये यह उचित है कि वह ऐसे संशोधनों की सूचना दे जो परस्पर असंगत हों? डॉ. अम्बेडकर ने ऐसे कई संशोधनों की सूचना दी है जो परस्पर असंगत हैं।

***अध्यक्ष:** इस सभा के सदस्यों के लिये असंगत होना कोई असाधारण बात नहीं है।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** उक्त माननीय सदस्य को भी सम्मिलित करते हुये *(हंसी)*।

***श्री एच.वी. कामत:** मेरे संशोधन उनके समान असंगत नहीं हैं।

(जिन सदस्यों ने संशोधन संख्या 121, 122 और 123 की सूचना दी थी उन्होंने संकेत किया कि उनके संशोधन पेश किये हुये समझे जायें।)

(संशोधन संख्या 124 पेश नहीं किया गया।)

(जिन सदस्यों ने संशोधन संख्या 125, 126, 127, 128, 129, 130, 131, 132, 133, 134, 135, 136, 137, 138, 139, 140, 141, 142, 143, 144, 145, 146, 147, 148, 149, 150, 151, 152, 153, 154, 155, 156, 157, 158, 159, 160, 161, 162, 163, 164, 165, 166 और 167 की सूचना दी थी उन्होंने संकेत किया कि उनके संशोधन पेश किये हुये समझे जायें।)

(संशोधन संख्या 168 पेश नहीं किया गया।)

(जिन सदस्यों ने संशोधन संख्या 169, 170, 171, 172, 173, 174 और 175 की सूचना दी थी उन्होंने संकेत किया कि उनके संशोधन पेश किये हुये समझे जायें।)

(संशोधन संख्या 176 पेश नहीं किया गया।)

(जिन सदस्यों ने संशोधन संख्या 177 और 178 की सूचना दी थी उन्होंने संकेत किया कि उनके संशोधन पेश किये हुये समझे जायें।)

***अध्यक्ष:** क्या मेरे लिए यह आवश्यक है कि शेष संशोधनों के लिये मैं इसी रीति का पालन करूं? कोई भी उन्हें वापस करने के लिये तैयार नहीं होगा। 178 संशोधनों को लेने के बाद मैं नहीं समझता हूं कि शेष संशोधनों के लिये इसी रीति का पालन करना मेरे लिये आवश्यक है, और उन सबको मैं पेश किया हुआ मान लेता हूं।

***पं. बालकृष्ण शर्मा:** क्या मैं आपका ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित कर सकता हूं कि हम में से कुछ लोगों ने आज ही संशोधनों की सूचना दी है और आपने उनको कार्यक्रम में रख लिया है। श्रीमान, क्या मैं यह जान सकता हूं कि उन संशोधनों को भी पेश किया हुआ समझा जायेगा?

***अध्यक्ष:** इस बैठक के आरम्भ होने के समय तक जिन संशोधनों की सूचना दी जा चुकी थी उनको पेश किया हुआ समझा जायेगा। उनको आज सायंकाल को घुमा दिया जायेगा। समय नहीं था।

अब हम वाद-विवाद आरम्भ करेंगे। श्री गोपालस्वामी आयंगर प्रथम संशोधन संख्या 65 पेश करेंगे।

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं यह समझता हूं कि इस पूरे के पूरे संशोधन को पढ़ना मेरे लिये अनावश्यक है।

***अध्यक्ष:** मैं नहीं समझता हूं कि वह आवश्यक है।

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर:** आरम्भ में ही मैं यह कहना चाहता हूं कि इस दोपहर बाद के सभारम्भ में जो अपील की थी उसके पालन करने

[माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर]

का मैं भरसक प्रयत्न करूंगा। मैं संक्षेप में बोलने का प्रयास करूंगा और इससे अधिक क्या हो सकता है कि इस विषय पर विचार प्रस्तुत करने में मेरा यह प्रयत्न होगा कि मैं विषय से संगत रहूं। यह समस्या हमारे सामने बहुत समय पहले से है। इस पर हमने छोटे-छोटे समूहों में, बड़े-बड़े समूहों में देश में समाचार-पत्रों में तथा अन्य रूप से भी वाद-विवाद कर लिया है। इन विभिन्न स्थानों में इस समस्या पर बहुत कुछ कहा जा चुका है। इस विषय पर सदैव मतैक्य नहीं रहा है। फिर भी एक बात ऐसी थी जिस पर हम सब लगभग एक ही परिणाम पर पहुंचे थे कि भारत की किसी एक भाषा को हम समस्त भारत की सार्वजनिक भाषा के रूप में चुन लें और उस भाषा का संघ के सरकारी प्रयोजनों में प्रयोग हो। इन भाषा को चुनने में अनेक बातों पर विचार किया गया। इन वाद-विवादों के अन्त में जिस निर्णय पर पहुंचे उसको मैं सरलता से न मान सका क्योंकि उसका अर्थ था कि उस भाषा को विदा कर दिया जाये जिसके द्वारा मेरे विचार से हमने स्वतन्त्रता प्राप्त की है। यद्यपि अन्त में मैंने उस निर्णय को स्वीकार किया कि उस भाषा को धीरे-धीरे छोड़ा जाये और उसके स्थान में हम इस देश की एक भाषा को रखें, पर ऐसा नहीं कि बिना किसी दु:ख के मैंने यह निर्णय मान लिया हो।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): दुर्भाग्यवश जो कुछ माननीय सदस्य कह रहे हैं वह मुझे सुनाई नहीं दे रहा है। क्या कोई व्यक्ति ध्वनि प्रसारक को ठीक करेगा?

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर:** जैसाकि सब माननीय सदस्यों को विदित है कि इस विशिष्ट विषय पर अन्तिम विनिश्चय यह है कि नये संविधान के अधीन संघ के समस्त सरकारी प्रयोजनों के लिये हम हिन्दी भाषा को ग्रहण करें। निस्सन्देह, यह एक अन्तिम लक्ष्य है जिसे प्राप्त करना है। इसमें यह भाव निस्सन्देह रूप में निहित है कि जब हम उस लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं तो हमें उस भाषा को विदा करना होगा जिसमें हममें से कई पले पोसे हैं और जैसा कि मैंने कहा था जिसकी शक्ति से हमने स्वतन्त्रता प्राप्त की है—मेरा अभिप्राय भाषा से है।

आगे चल कर अंग्रेजी भाषा के स्थान में हिन्दी भाषा रखने का विनिश्चय कर लेने पर हमें दो और विनिश्चय इसी विनिश्चय के सम्बन्ध में करने पड़े। ये विनिश्चय ये थे कि हम अंग्रेजी भाषा को एकदम नहीं छोड़ सकते हैं। अंग्रेजी भाषा को हमें कई वर्षों तक रखना पड़ा जब तक कि हिन्दी भाषा केवल इसी आधार पर नहीं कि वह एक भारतीय भाषा है बल्कि इस आधार पर अपने लिये स्थान न बना ले कि भाषा के रूप में जो कुछ भविष्य में हमें कहना या करना है उस सबके लिये वह एक सफल साधन हो सके और जब तक हिन्दी वह स्थान प्राप्त न कर ले जिसको अंग्रेजी आज संघ प्रयोजनों के लिये प्राप्त किये हुए हैं। अत: हमने इसके बाद विनिश्चय किया, अर्थात् यह कि पन्द्रह वर्ष तक

जिन प्रयोजनों के लिये आज अंग्रेजी भाषा का प्रयोग हो रहा है उन सब प्रयोजनों के लिए उसका प्रयोग होता रहेगा और संविधान के प्रारम्भ पर भी प्रयोग होगा।

इसके बाद श्रीमान, हमें इस समस्या के अन्य पहलुओं पर भी विचार करना पड़ा। उदाहरणार्थ हमें अंकों के विषय पर भी विचार करना पड़ा जिसके बारे में चन्द टिप्पणियों में कुछ अधिक विवरणपूर्ण बातें मुझे कहनी पड़ेंगी। इसके बाद हमें राज्यों की भाषा के विषय पर विचार करना था और हमने यह निश्चय किया कि जहां तक हो सके किसी राज्य में बोली जाने वाली भाषा को उस राज्य में सरकारी प्रयोजनों के लिये प्रयुक्त होने वाली भाषा के रूप में अभिज्ञात करना चाहिये और अन्तर्देशीय संचार तथा उस राज्य और केन्द्र में परस्पर संचार के लिये अंग्रेजी भाषा का प्रयोग बना रहे, परन्तु यदि दो राज्यों में परस्पर यह करार हो गया है कि अन्तर्देशीय संचार हिन्दी में हो तो वह होने दिया जाये।

इसके बाद हमने भाषा के उस रूप पर विचार किया जिसका हमारे विधान मंडलों या देश के सर्वोच्च न्यायालयों में प्रयोग होगा और बहुत विचार-विमर्श तथा वाद-विवाद के पश्चात् हम इस परिणाम पर पहुंचे कि यद्यपि संघ की भाषा 'हिन्दी' का वाद-विवाद के लिये केन्द्रीय विधानमंडल में प्रयोग होगा और राज्य के विधानमंडलों में ऐसे प्रयोजनों के लिये राज्य की भाषा का प्रयोग हो सकेगा, पर यदि हम अपनी विधि के मूल पाठ और उस मूल पाठ के न्यायालयों में निर्वचन के संबंध में वर्तमान संतोषजनक वस्तुस्थिति को कायम रखना चाहते हैं तो हमारे लिये यह आवश्यक है कि वह भाषा अंग्रेजी हो जिसमें विधान, चाहे वह विधेयकों तथा अधिनियमों के रूप में हो अथवा नियमों तथा आदेशों के रूप में हो, और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों द्वारा दिये गये निर्णयों का निर्वाचन आगे आने वाली कई वर्षों तक अंग्रेजी में हो। मेरा विचार यह है कि भविष्य में कई वर्षों तक इसे रखना होगा। यह इस कारण नहीं है कि इन प्रयोजनों के लिये हम हर प्रकार से अंग्रेजी भाषा रखना चाहते हों। यह इस कारण है कि जिस भाषा को हम संघ के प्रयोजनों के लिये अभिज्ञात करते हैं और जिन भाषाओं को हम राज्य के प्रयोजनों के लिये अभिज्ञात करते हैं वे काफी उन्नत नहीं हैं और जिन प्रयोजनों का मैंने वर्णन किया है अर्थात् विधियों तथा न्यायालयों द्वारा विधियों के निर्वचन का वे पर्याप्त रूप से सही अर्थबोध नहीं कर पाती हैं।

इसके बाद हमें एक व्यापक तथ्य को अभिज्ञात करना है वह यह कि यद्यपि संघ के सरकारी प्रयोजनों के लिये हमने हिन्दी भाषा को अभिज्ञात कर लिया है फिर भी हमें यह मानना चाहिये और आज वह भाषा काफी उन्नत नहीं है। कई दिशाओं में उसे बहुत ही समृद्धिशाली बनाना अपेक्षित है, उसमें आधुनिकता लाना अपेक्षित है, उसे विचार ग्रहण करने के लिये और केवल विचार ही नहीं वरन् शैली अभिव्यंजना और अन्य भाषाओं की वाक्य शैली ग्रहण करने के लिये सामर्थ्यवान बनाना बनाना अपेक्षित है। इस प्रयोजन के लिये इस मसौदे में हमने एक अनुच्छेद रखा है जो राज्य के लिये यह कर्तव्य निर्धारित करता है कि वह भाषा की प्रगति

[माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर]

में उन्नति करे जिससे उसमें ये सब समृद्धियां आ आयें और कालान्तर में वह उस अंग्रेजी भाषा का सम्यक् रूप से स्थान ग्रहण करने के लिये पर्याप्त रूप में समुन्नत हो जाये जिसके लिये हमारा यह निश्चित विचार है कि वह कालान्तर में हमारी सरकारी रूप से अभिज्ञात कार्यवाहियों तथा कार्यों में न रहे। जिस मसौदे को मैंने पेश किया है उसके सामान्यतया ये विषय आधार स्वरूप हैं।

इस मसौदे पर विचार करते हुये मैं सभा के समक्ष एक या दो तथ्य रखना चाहता हूं। प्रथम तथ्य जिसे मैं सभा के समक्ष रखना चाहता हूं वह यह है कि यह मसौदा बहुत विचार तथा बहुत वाद-विवाद के पश्चात् तैयार हुआ है। परिणामस्वरूप जो कुछ यह बना है यह उन मतों का परस्पर समझौता है जिनमें समझौता करना सरल नहीं था, इस कारण जब आप इस मसौदे की ओर ध्यान दें तो आपको इसे किसी ऐसे मसौदे के रूप में नहीं लेना होगा जिसे मुझ जैसे किसी एक व्यक्ति ने अथवा यदि मैं अपने अन्य दो साथियों को शामिल कर लूं तो उन तीन व्यक्तियों ने, जिनके नाम यहां दिये गये हैं प्रस्थापित किया हो। इसे ऐसा मसौदा नहीं समझना चाहिये जिसे हमने प्रस्तुत किया हो। यह मसौदा एक उस समझौते का परिणाम है जिसके लिये विचारों तथा हितों का महान बलिदान किया गया है और मसौदे के इस रूप को इस प्रकार का बनाया गया है कि वह इस पूरी सभा को मान्य हो।

इसके पश्चात् मैं सभा का ध्यान इस मसौदे में निहित एक या दो मूलभूत सिद्धांतों की ओर आकर्षित करना चाहता हूं। इस मसौदे के निर्माताओं के अनुसार हमारी मूलभूत नीति यह होनी चाहिये कि संघ प्रयोजनों के लिये भारत की सामान्य भाषा हिन्दी हो और लिपि देवनागरी लिपि हो। इस मूलभूत नीति का एक भाग यह भी है कि संघ के सब सरकारी प्रयोजनों में जिन अंकों का प्रयोग होगा वे वे अंक होने चाहिये जिनको भारतीय अंकों का अखिल भारतीय रूप कहा जाता है। इस मसौदे के लेखकों का यह विचार है कि इस संबंध में सदा के लिये इस मूलभूत नीति के ये तीनों पद मुख्य भाग होने चाहियें। इस तथ्य पर मैं इस कारण जोर देना चाहता हूं कि मैं जानता हूं कि इस सभा में एक ऐसी मत धारा है कि जहां तक भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप का संबंध है उनको इस योजना में उसी आधार पर रखना चाहिये जिस पर अंग्रेजी भाषा है। जिन लोगों पर इस मसौदे का उत्तरदायित्व है वे इस प्रस्थापना के समर्थक नहीं हैं। हम समझते हैं कि इस देश की सार्वजनिक भाषा में जिस सीमा तक हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि स्थायी रूप ग्रहण करे उसी सीमा तक इस मूलभूत नीति में भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप का भी एक स्थायी रूप हो। इस मसौदे का मूलाधार यह है।

यह सच है कि उन लोगों से समझौता करने के लिये जिनका मत भिन्न प्रकार का था हमने इस मसौदे में एक दो रियायतें ऐसी कर दीं जिनके बारे में हमने यह सोचा कि इन रियायतों के कारण वे लोग हमारे साथ हो जायेंगे। एक रियायत

यह है कि यद्यपि भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप ही अंकों का स्थायी रूप होगा, पर राष्ट्रपति प्रथम पन्द्रह वर्ष की अवधि तक, जिसमें लगभग समस्त प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग होगा, यह निदेश दे सकेगा कि संघ के किसी एक अथवा अधिक प्रयोजनों के लिये भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप के साथ-साथ देवनागरी अंकों का भी प्रयोग हो।

दूसरी रियायत जो दी गई है वह यह है कि विशिष्ट सरकारी प्रयोजनों के लिए प्रयोग में लाये जाने वाले भारतीय अंकों के रूप में प्रश्न उन प्रश्नों में से एक होना चाहिये जो अनुच्छेद 301-ख—मैं समझता हूं वह अनुच्छेद 301-ख ही है—के अधीन नियुक्त किये जाने वाले आयोग के पास भेजे जायेंगे और आयोग का यह एक कर्तव्य होगा कि वह इस विषय पर सिफारिश करे। उस आयोग द्वारा यह बात कही जाने की हमने कल्पना कर ही ली है "भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप के स्थान में अंकों के देवनागरी रूप रखे जायें।" परन्तु हम यह रियायत देने के लिये तैयार हैं क्योंकि हमने यह सोचा कि यह एक ऐसी भावना है जिसकी वे लोग प्रशंसा करेंगे जिनका विचार कुछ भिन्न है और हमें यह भी पूर्ण विश्वास है कि भविष्य में इस प्रकार के जिस निष्पक्ष आयोग की रचना की जायेगी उसके समक्ष भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप को रखने के पक्ष के तर्क ऐसी किसी सभा के वातावरण की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली सिद्ध होंगे जिसमें उतना मतभेद हो जितना आज इस सभा में दिखाई दे रहा है। इन जोखिमों को उठाने के लिये हम तैयार हैं। इन तथ्यों का वर्णन मैंने यह प्रकट करने के लिये किया है कि जो लोग इस मूलभूत नीति के समर्थक हैं जिसकी मैंने व्याख्या की है उन्हें कितना महान त्याग भिन्न-भिन्न विचारों के समर्थकों के लिये एक उचित समझौता करने के प्रयोजनार्थ करना पड़ा है।

मैं समझता हूं कि अब इस सभा के समक्ष भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप की मांगों की सिफारिश करना मेरे लिये आवश्यक नहीं होगा। इसके बारे में सदस्यों ने बहुत कुछ पढ़ लिया होगा और मुझे विश्वास है कि मेरे बाद में बोलने वाले सदस्य इसके बारे में बहुत कुछ कहेंगे अतः इस विषय के इतिहास में मैं नहीं जाना चाहता हूं। मैं केवल एक या दो तथ्यों का वर्णन करूंगा। अंकों के इन रूपों ने हमारे देश में जन्म लिया था अतः इन अंकों के लगभग उस विश्वव्यापी प्रयोग को, जिसको इस समय देश की भावी भाषा के स्वरूप का एक भाग बनाया जा रहा है, बनाये रखने में हमें गौरव होना चाहिये। (वाह, वाह) दूसरी बात यह है कि शायद एक या दो अपवादों के समस्त संसार में इन अंकों को अपना लिया है। यही मार्ग केवल ठीक है कि हम समस्त संसार के साथ रहें, या कि वह वास्तव में एक विपरीत रूप में होना चाहिये, सारा संसार तो हमारा साथ देने के लिये तैयार है जिन्होंने वास्तव में ये अंक संसार को दिये हैं। तो क्या हम संसार के इस गौरवपूर्ण पद को और इससे जो सब लाभ हमें होते हैं उनको ठुकरा दें? क्या हम किसी ऐसी वस्तु को अपनाने के लिये, ऐसा करें जिसको इस देश तक में सर्वत्र नहीं अपनाया गया है और भविष्य में जिसका संसार में प्रयोग होना असंभव

[माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर]

है? इसके पूर्व कि सभा इस विषय पर किसी परिणाम पर पहुंचे इन दो तथ्यों को मैं विशेषकर सभा के समक्ष रखना चाहूंगा।

श्रीमान, इस विशेष विषय के संबंध में कई विकल्प प्रस्थापित किये गये हैं, परन्तु मैं केवल अन्तिम विकल्प की ओर निर्देश करूंगा जो आज ही आपको दिया गया है उस ओर प्रस्थापना में यह कहा गया है कि भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप को लगभग उसी आधार पर रखा जायेगा जिस आधार पर इस योजना के अन्तर्गत अंग्रेजी भाषा को रखा गया है। इसका आशय यह है कि प्रथम पन्द्रह वर्ष तक भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप का प्रयोग होता रहेगा और उसके बाद संसद के विनिश्चय पर छोड़ दिया जाये कि किन-किन प्रयोजनों के लिये अन्तर्राष्ट्रीय रूप वा देवनागरी रूप अथवा दोनों का प्रयोग किया जाये। यह प्रस्थापना बड़ी सुन्दर सी लगती है। पर इसमें यह भावना छिपी हुई है कि देश में से भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप को हटाने की आशा की आप कल्पना करते हैं। जिन लोगों पर इस मसौदे का उत्तरदायित्व है उन लोगों की ऐसी आशा नहीं है जिसकी वे देश तथा संसार के विशालतम हितों में शांति जैसी वस्तु के साथ कल्पना कर सकें। अत: इस समूची समस्या पर इस गलत विचारधारा के कारण मुझे विवश होकर यह कहना पड़ता है कि हमारे इस विशिष्ट विचार के मानने वालों के लिये इस विकल्प पर विचार करना संभव नहीं हो सकता है।

इसके बाद श्रीमान, उस उपबंध के बारे में कुछ शब्द कहूंगा जिसको हमने अध्याय तीन में रखा है अर्थात् न्यायालय की भाषा। हम इसे मुख्य तत्व समझते हैं कि जब तक हिन्दी उस सीमा तक उन्नत न हो जाये कि वह विधि-निर्माण तथा विधि-निर्वचन के लिये उपयुक्त वाहक बन सके और उसके पश्चात् संसद पूर्ण विचार कर इस परिणाम पर पहुंचे कि वह अंग्रेजी भाषा का स्थान ले सकेगी तब तक सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों में अंग्रेजी का प्रयोग होता रहेगा। मेरा अपना विचार यह है कि विधेयकों तथा विधियों के रूप में और इन विधियों के निर्वचन के रूप में अंग्रेजी पन्द्रह वर्ष से बहुत अधिक काल तक के लिये रहेगी। यह मेरा निजी अनुमान है। यह आवश्यक है कि हम यह समझ लें कि यह अध्याय क्योंकर रखा गया है। विधि निर्माण और विधि-निर्वचन के लिये सुनिश्चित अर्थबोध बहुत अपेक्षित है; इसके लिये कई पदों और शब्दों की आवश्यकता होती है जिनका एक निश्चित अर्थ हो गया है; और जब तक हिन्दी भाषा इस स्थिति को प्राप्त न हो तब तक अंग्रेजी भाषा का प्रयोग होगा और यद्यपि मैं स्वयं हिन्दी भाषा से अनभिज्ञ हूं (वाह, वाह) पर मैं नहीं समझता हूं कि अभी हिन्दी भाषा उस स्थिति के निकट तक भी पहुंच पाई हो। इस सभा में जो कुछ होता है उसका हिन्दी अनुवाद मैंने बहुत कुछ देखा है और मुझे यह कहना पड़ता है कि जो कुछ थोड़ी बहुत हिन्दी मैं जानता हूं उससे इस प्रकार के अनुवाद को समझने में मुझे कुछ भी सहायता नहीं मिलती है। संभव है कि मुझ से अधिक हिन्दी जानने वाले उसे समझ सकें; शायद कभी-कभी मैं इस कारण उसे नहीं समझ पाता हूं कि इन अनुवादों में संस्कृत के अधिक शब्दों का प्रयोग किया जाता

है। पर यह वह हिन्दी नहीं है जिसे आप न्यायालय या विधायी प्रयोजनों के हेतु प्रयोग में ला सकें।

मैं एक निजी अनुभव-जन्य कहानी आपको सुना सकता हूं। दस वर्ष पूर्व मैं जम्मू और काश्मीर राज्य का संविधान बना रहा था। एक धारा में विधानमंडल की भाषा का वर्णन करना था और जो पदाधिकारी उसका मसौदा बना रहे थे उन्होंने भारत शासन अधिनियम की भाषा का केवल अनुकरण किया था अर्थात् यह कि भाषा अंग्रेजी होनी चाहिये, परन्तु यदि कोई सदस्य अंग्रेजी से अपरिचित अथवा पर्याप्त रूप से परिचित नहीं था तो वह किसी उस भाषा में भाषण दे सकता था जिससे वह परिचित हो। संयोगवश ऐसा हुआ कि जब मैं इस मसौदे पर विचार कर रहा था स्वर्गीय सर तेज बहादुर सप्रू श्रीनगर पहुंचे और मैंने सोचा कि उनकी उपस्थिति से लाभ उठाऊं और उनसे मंत्रणा लूं और मैंने उस मसौदे को उनके पास भेज दिया। मुख्य रूप से जिस अंश का उन्होंने विरोध किया वह यह विधानमंडल की भाषा संबंधी धारा थी। उन्होंने कहा "एक ऐसी देशी रियासत में जहां न्यायालयों और पाठशालाओं इत्यादि की भाषा उर्दू है वहां क्या आप वास्तव में विधानमंडल की भाषा अंग्रेजी रख सकते हैं?" मेरा उनसे लम्बा वाद-विवाद हुआ; मैंने उनसे कहा, "मैं आपकी बात समझता हूं। मैं इस बात से सहमत हूं कि वहां तक तो विधान-मंडल की भाषा उर्दू होनी चाहिये जहां तक कि जो लोग अंग्रेजी नहीं जानते हैं उनको उर्दू में बोलने दिया जाये। पर आप हैं एक बड़े वकील और मान लीजिये कि कल मैं आपको यहां की उच्च न्यायालय या प्रीवी परिषद् में ले जाना चाहूं और आपसे इस संविधान की किसी धारा के निर्वचन करने और उस पर तर्क करने के लिये कहूं और यदि वह उर्दू में बना हुआ है तो क्या आप इस कार्य को सुखपूर्वक कर सकेंगे?" उन्होंने मेरे तर्क को समझा। समझौते के रूप में मैंने उनसे कहा "वाद-विवाद के लिये मैं उर्दू को विधान मंडल की भाषा के रूप में एक परन्तुक सहित रख दूंगा कि विधेयकों और अधिनियमों का प्राधिकृत मूल रूप अंग्रेजी में ही होगा।" उन्होंने तुरन्त ही मेरे इस सुझाव को स्वीकार किया और सोचा कि जो समस्या हम दोनों के सामने थी उसका यही सबसे अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण हल है।

इसका उल्लेख मैं आपके सामने इसलिये कर रहा हूं कि हमें भी ऐसी ही समस्या का सामना करना है। हमारी न्यायालयों में अंग्रेजी की प्रथा है, अंग्रेजी में बनी हुई विधियों के वे आदी है; अंग्रेजी में निर्वचन करने के वे आदी हैं। हमें सदैव अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी भाषा में समुचित पर्याय नहीं मिल पाते हैं और उसके बाद उन सब उदाहरणों और आदेशों के सहित उस शब्द का निर्वचन नहीं कर पाते हैं जिसका निर्देश केवल अंग्रेजी शब्दों की ओर होता है न कि हिन्दी शब्दों की ओर। इसी कारण यदि इस संविधान को क्रियान्वित करना है तो हमने यह नितान्त आवश्यक समझा, इसे लगभग मूल तत्व के समान समझा कि यह अध्याय संविधान में रखा जाये।

[माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर]

श्रीमान, मैं अन्य विषयों में नहीं जाना चाहता हूं, क्योंकि मेरे लिये जो समय नियत किया गया था मैंने उससे अधिक समय से लिया है। मैं केवल सभा से यह निवेदन करूंगा कि हम इस समस्या पर विशुद्ध लक्ष्यमूलक दृष्टिकोण से ध्यान दें। केवल भावनाओं से अथवा किसी भी बात के पुनरुत्थान के प्रति किसी प्रकार की निष्ठा से हम प्रभावित न हों। हमें इस विषय पर व्यावहारिक दृष्टिकोण से विचार करना है। हमें उस तन्त्र को ग्रहण करना है जो-जो कुछ हम भविष्य में करना चाहते हैं उसके लिये सबसे अधिक लाभदायक हो और श्रीमान, मैं आपसे सहमत हूं कि यदि इस विषय पर हमें सभा में मतविभाजन करना पड़ा तो यह एक बहुत ही दु:खदायी बात होगी, ऐसे प्रमुख विषय पर किसी एक परिणाम पर पहुंचने में अपनी असमर्थता का वह एक बड़ा ही निराशाजनक उदाहरण होगा। मुझे विश्वास है कि हम लोगों में सद्भावना रहेगी।

श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि भाग 14 के पश्चात् यह नया भाग जोड़ दिया जाये:-

'New Part XIV-A

CHAPTER I—LANGUAGE OF THE UNION

Official language of the Union.

301A. (1) The official language of the Union shall be Hindi in Devanagari script and the form of numbers to be used for the official purposes of the Union shall be the international form of Indian numerals.

(2) Notwithstanding anything contained in clause (1) of this article, for a period of fifteen years from the commencement of this Constitution, the English language shall continue to te used for all the official purposes of the Union, for which it was being used at such commencement:

Provided that the President may, during the said period, by order authorise for any of the official purposes of the Union the use of the Hindi language in addition to the English language and of the Devanagari form of numerals in addition to the international form of Indian numerals.

(3) Notwithstanding anything contained in this article, Parliament may by law provide for the use of the English language after the said period of fifteen years for such purposes as may be specified in such law.

Commission and Committee of Parliament on official language.

301B. (1) The President shall, at the expiration of five years from the commencement of this Constitution and thereafter at the expiration of ten years from such commencement, by order constitute a commission which shall consist of a Chairman and such other members representing the different languages specified in Schedule VII-A as the President may appoint, and the order shall define the procedure to be followed by the Commission.

(2) It shall be the duty of the Commission to make recommendations to the President as to—

(a) the progressive use of the Hindi language for the official purposes of the Union;

(b) restrictions on the use of the English language for all or any of the official purposes of the Union;

(c) the language to be used for all or any of the purposes mentioned in article 301E of this Constitution;

(d) form of numerals to be used for any one or more specified purposes of the Union:

(e) any other matter referred to the Commission by the President as regards the official language of the Union and the language of inter-State communication and their use.

(3) In making their recommendations under clause (2) of this article, the Commission shall have due regard to the industrial, cultural and scientific advancement of India, and the just claims and the interests of the non-Hindi speaking areas in regard to the public services.

(4) There shall be constituted a Committee consisting of thirty members of whom twenty shall be members of the House of the People and ten shall be members of the Council of States chosen respectively by the members of the House of the People and the members of the

[माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर]

Council of States in accordance with the system of proportional representation by means of the single transferable vote.

(5) It shall be the duty of the Committee to examine the recommendations of the Commission constituted under this article and to report to the President their opinion thereon.

(6) Notwithstanding anything contained in article 301-A of this Constitution, the President may after consideration of the report referred to in clause (5) of this article issue directions in accordance with the whole or any part of the report.

CHAPTER II—REGIONAL LANGUAGES

Official language or languages of a State.

301C. Subject to the provisions of articles 301D and 301E, a State may by law adopt any of the languages in use in the State or Hindi as the language or languages to be used for all or any of the official purposes of that State:

Provided that until the Legislature of the State otherwise provides by law, the English language shall continue to be used for those official purposes within the State for which it was being used at the commencement of this Constitution.

Official language for communication between one State and another or between a State and the Union.

301D. The language for the time being authorised for use in the Union for official purposes shall be the official language for communication between one State and another State between a State and the Union:

Provided that if two or more States agree that the Hindi language should be the official language of communication between such States, that language may be used for such communication.

301E. Where on a demand being made in that behalf the President is satisfied that a substantial proportion of the population of

Special provision relating to language spoken by a section of the population of a State

a State desires the use of any language spoken by them to be recognised by that State he may direct that such language shall also be officially recognised throughout that State or any part thereof for such purpose as he may specify.

CHAPTER III—LANGUAGE OF SUPREME COURT AND HIGH COURTS, ETC.

Language to be used in the Supreme Court and in the High Courts and for Acts, Bills, etc.

301F. Notwithstanding anything contained in the foregoing provisions of this Part, until Parliament by law otherwise provides—

(a) all proceedings in the Supreme Court and in every High Court,

(b) the authoritative texts—

(i) of all Bills to be introduced or amendments thereto to be moved in either House of Parliament or in the house or either House of the Legislature of a State,

(ii) of all Acts passed by Parliament or the Legislature of a State and of all ordinances promulgated by the President or a Governor or a Ruler, as the case may be,

(iii) of all orders, rules, regulations and bye-laws issued under this Constitution or under any law made by Parliament or the Legislature of a State, shall be in the English language.

Special procedure for enactment of certain laws relating to language.

301G. During the period of fifteeen years from the commencement of this Constitution no Bill or amendment making provision for the language to be used for any of the purposes mentioned in article 301F of this Constitution shall be introduced or moved in either House of Parliament without the previous sanction of the

[माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर]

President, and the President shall not give his sanction to the introduction of any such Bill or the moving of any such amendment except after he has taken into consideration the recommendations of the Commission constituted under article 301B of this Constitution and the report of the Committee referred to in that article.

CHAPTER IV—SPECIAL DIRECTIVES

Language to be used for representation for redress of grievances.

301H. Every person shall be entitled to submit a representation for the redress of any grievance to any officer or authority of the Union or a State in any of the languages used in the Union or in the State, as the case may be.

Directive for development of Hindi.

301-I. It shall be the duty of the Union to promote the spread of Hindi and to develop the language so as to serve as a medium of expression for all the elements of the composite culture of India and to secure its enrichments by assimilating without interfering with its genius, the forms, style and expressions used in Hindustani and in the other languages of India, and drawing, wherever necessary or desirable, for its vocabulary, primarily on Sanskrit and secondarily on other languages.

Schedule VIIA

1.	Assamese	8.	Marathi
2.	Bengali	9.	Oriya
3.	Canarese	10.	Punjabi
4.	Gujarati	11.	Tamil
5.	Hindi	12.	Telugu
6.	Kashmiri	13.	Urdu'"
7.	Malayalam		

[नवीन भाग 14-क

राजभाषा

अध्याय-1 संघ की भाषा

संघ की राजभाषा।

301 क. (1) संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी और संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिये प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अन्तर्राष्ट्रीय रूप होगा।

(2) खंड (1) में किसी बात के होते हुए भी इस संविधान के प्रारम्भ से पन्द्रह वर्ष की कालावधि के लिये संघ के उन सब राजकीय प्रयोजनों के लिये अंग्रेजी भाषा प्रयोग की जाती रहेगी जिनके लिये ऐसे प्रारम्भ के ठीक पहले वह प्रयोग की जाती थी:

परन्तु राष्ट्रपति उक्त कालावधि में, आदेश द्वारा संघ के राजकीय प्रयोजनों में से किसी के लिये अंग्रेजी भाषा के साथ-साथ हिन्दी भाषा का तथा भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप के साथ-साथ देवनागरी रूप का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेगा।

(3) इस अनुच्छेद में किसी बात के होते हुये भी संसद उक्त पन्द्रह साल की कालावधि के पश्चात् विधि द्वारा अंग्रेज़ी भाषा का ऐसे प्रयोजनों के लिये प्रयोग उपबन्धित कर सकेगी जैसे कि ऐसी विधि में उल्लिखित हों।

राजभाषा के लिये संसद का आयोग और समिति।

301ख.(1) राष्ट्रपति इस संविधान के प्रारम्भ से पांच वर्ष की समाप्ति पर तथा तत्पश्चात् ऐसे प्रारम्भ से दस वर्ष की समाप्ति पर, आदेश द्वारा एक आयोग गठित करेगा जो एक सभापति और सप्तम (क) अनुसूची में उल्लिखित भिन्न भाषाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले ऐसे अन्य सदस्यों से मिलकर बनेगा जैसे कि राष्ट्रपति नियुक्त करे, तथा आयोग द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया भी आदेश परिभाषित करेगा।

(2) राष्ट्रपति को–

(क) संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिये हिन्दी भाषा के उत्तरोत्तर अधिक प्रयोग के;

(ख) संघ की राजकीय प्रयोजनों में से सब या किसी के लिये अंग्रेजी भाषा के प्रयोग पर निर्बन्धनों के;

(ग) अनुच्छेद 301ङ में वर्णित प्रयोजनों में से सब या किसी के लिये प्रयोग की जाने वाली भाषा के;

(घ) संघ के किसी एक या अधिक उल्लिखित प्रयोजनों के;

(ङ) संघ की राजभाषा तथा एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच संचार की भाषा तथा उनके प्रयोग के बारे में राष्ट्रपति द्वारा आयोग से पृच्छा किये हुये किसी अन्य विषय के बारे में सिफारिश करने का आयोग का कर्तव्य होगा।

(3) खंड (2) के अधीन अपनी सिफारिशें करने में आयोग भारत की औद्योगिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक उन्नति का तथा लोक सेवाओं के बारे में अहिन्दी भाषाभाषी क्षेत्रों के लोगों के न्यायपूर्ण दावों और हितों का सम्यक ध्यान रखेगा।

[माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर]

(4) तीस सदस्यों की एक समिति गठित की जायेगी जिनमें से बीस लोक सभा के सदस्य होंगे तथा दस राज्य परिषद् के सदस्य होंगे जो कि क्रमशः लोक सभा के सदस्यों तथा राज्य परिषद् के सदस्यों द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित होंगे।

(5) इस अनुच्छेद के अधीन गठित आयोग की सिफारिशों की परीक्षा करना तथा उन पर अपनी राय का प्रतिवेदन राष्ट्रपति को करना समिति का कर्तव्य होगा।

(6) अनुच्छेद 301क में किसी बात के होते हुये भी राष्ट्रपति खंड (5) में निर्दिष्ट प्रतिवेदन पर विचार करने के पश्चात् उस सारे प्रतिवेदन के या उसके किसी भाग के अनुसार निदेश निकाल सकेगा।

अध्याय–2 प्रादेशिक भाषायें

राज्य की राजभाषा या राजभाषायें।

301ग. अनुच्छेद 301घ और 301ङ के उपबन्धों के अधीन रहते हुये राज्य विधि द्वारा उस राज्य के राजकीय प्रयोजनों में से सब या किसी के लिये प्रयोग के अर्थ उस राज्य में प्रयुक्त होने वाली भाषाओं में से किसी एक या अनेक को या हिन्दी को अंगीकार कर सकेगा:

परन्तु जब तक राज्य का विधान-मंडल विधि द्वारा इससे अन्यथा उपबन्ध न करे तब तक राज्य के भीतर उन राजकीय प्रयोजनों के लिये अंग्रेजी भाषा प्रयोग की जाती रहेगी जिनके लिये इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले वह प्रयोग की जाती थी।

एक राज्य और दूसरे के बीच में अथवा राज्य और संघ के बीच में संचार के लिये राजभाषा।

301घ. संघ में राजकीय प्रयोजनों के लिये प्रयुक्त होने के लिये तत्समय प्राधिकृत भाषा, एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच में तथा किसी राज्य और संघ के बीच में संचार के लिये राजभाषा होगी:

परन्तु यदि दो या अधिक राज्य करार करते हैं कि ऐसे राज्यों के बीच में संचार के लिये राजभाषा हिन्दी भाषा होगी तो ऐसे संचार के लिये वह भाषा प्रयोग की जा सकेगी।

किसी राज्य के जनसमुदाय के किसी विभाग द्वारा बोली जाने वाली भाषा के सम्बन्ध में।

301ङ. तद्विषयक मांग की जाने पर यदि राष्ट्रपति का समाधान हो जाये कि किसी राज्य के जनसमुदाय का पर्याप्त अनुपात चाहता है कि उसके द्वारा बोली जाने वाली कोई भाषा राज्य द्वारा अभिज्ञात की जाये तो वह निदेश दे सकेगा कि ऐसी भाषा को उस राज्य में सर्वत्र अथवा उसके किसी भाषा में ऐसे प्रयोजन के लिये जैसा कि वह उल्लिखित करे राजकीय अभिज्ञा दी जाये।

अध्याय–3 उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालयों आदि की भाषा

उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में तथा अधिनियमों, विधेयकों आदि में प्रयोग की जाने वाली भाषा।

301च. इस भाग के पूर्ववर्ती उपबन्धों में किसी बात के होते हुए भी जब तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबन्ध न करे, तब तक–

(क) उच्चतम न्यायालय में तथा प्रत्येक उच्च न्यायालय में सब कार्यवाहियां;

(ख) जो–

(1) विधेयक, अथवा उन पर प्रस्तावित किये जाने वाले जो संशोधन, संसद के प्रत्येक सदन में अथवा राज्य के विधान-मंडल के सदन या प्रत्येक सदन में पुर:स्थापित किये जायें उन सबके प्राधिकृत पाठ,

(2) अधिनियम संसद द्वारा या राज्य के विधान-मंडल द्वारा पारित किये जायें, तथा जो अध्यादेश राष्ट्रपति या राज्यपाल या शासक द्वारा प्रस्थापित किये जायें, उन सबके प्राधिकृत पाठ, तथा

(3) आदेश, नियम, विनियम और उपविधि इस संविधान के अधीन, अथवा संसद् या राज्यों के विधान-मंडल द्वारा निर्मित किसी विधि के अधीन, निकाले जायें उन सबके प्राधिकृत पाठ,

अंग्रेजी भाषा में होंगे।

भाषा सम्बन्धी कुछ विधियों के अधिनियमित करने के लिये विशेष प्रक्रिया।

301छ. इस संविधान के प्रारम्भ से पन्द्रह वर्षों की कालावधि तक अनुच्छेद 301च में वर्णित प्रयोजनों में से किसी के लिये प्रयोग की जाने वाली भाषा के लिये उपबन्ध करने वाला कोई विधेयक या संशोधन संसद के किसी सदन में राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी के बिना न तो पुर:स्थापित और न प्रस्तावित किया जायेगा तथा ऐसे किसी विधेयक के पुर:स्थापित अथवा ऐसे किसी संशोधन के प्रस्तावित किये जाने की मंजूरी अनुच्छेद 301ख के अधीन गठित आयोग की सिफारिशों पर, तथा उस अनुच्छेद के अधीन गठित समिति के प्रतिवेदन पर, विचार करने के पश्चात् ही राष्ट्रपति देगा।

अध्याय–4 विशेष निदेश

व्यथा के निवारण के लिये अभिवेदन में प्रयोक्तव्य भाषा।

301ज. किसी व्यथा के निवारण के लिये संघ या राज्य के किसी पदाधिकारी या प्राधिकारी को यथा स्थिति संघ में या राज्य में प्रयोग होने वाली किसी भाषा में अभिवेदन देने का, प्रत्येक व्यक्ति को हक होगा।

[माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर]

हिन्दी भाषा के विकास के लिये निदेश।

301झ. हिन्दी भाषा की प्रसार वृद्धि करना, उसका विकास करना ताकि वह भारत की सामाजिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके, तथा उसकी आत्मीयता में हस्तक्षेप किये बिना हिन्दुस्तानी और अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात करते हुये तथा जहां आवश्यक या वांछनीय हो वहां उसके शब्द भंडार के लिये मुख्यत: संस्कृत से तथा गौणत: अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुये उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना संघ का कर्तव्य होगा।

अनुसूची 7क

1. असामिया
2. बंगला
3. कन्नड़
4. गुजराती
5. हिन्दी
6. काश्मीरी
7. मलयालम
8. मराठी
9. उड़िया
10. पंजाबी
11. तामिल
12. तेलगू
13. उर्दू]

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र:** जिस मसौदे की ओर माननीय सदस्य अभी निर्देश कर रहे थे उसके संबंध में उसके यह विचार हैं कि उस मसौदे के किसी भाग पर अलग या केवल उसी भाग पर विचार किया जा सकता है?

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर:** मेरा ख्याल है कि मैंने यह कहा था कि इस योजना पर समष्टि रूप में विचार करना चाहिये। वह बहुत वाद-विवाद तथा समझौते के फलस्वरूप बन पाई है। यदि मैं इस योजना पर जोर दे सकता हूं तो यह कहूंगा वह सब मिलकर एक योजना है। हम उसके किसी एक भाग को नहीं छोड़ सकते और यदि वह कोई बहुत ही तुच्छ या शाब्दिक सुधार हो या चाहे वह कोई छोटा-सा सारवत विषय तक हो जिसे आप रखना चाहते हैं तो बात दूसरी है इससे कोई अधिक अन्तर नहीं होता है। परन्तु इस मसौदे में महत्वपूर्ण बातें ये हैं कि सबको मिलाकर वह एक पूर्णरूप ग्रहण करता है और यदि आप उसके एक भाग को छेड़ेंगे तो अन्य बातें निष्फल हो जायेंगी।

***सेठ गोविन्द दास:** श्रीमान, मेरे लिये आज यह एक समस्या है कि सभा को किस भाषा में सम्बोधन करूं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान, एक औचित्य प्रश्न है। माननीय सदस्य हिन्दी का समर्थन कर रहे हैं अत: उन्हें अंग्रेजी में नहीं बोलना चाहिये।

***अध्यक्ष:** मुझे इसमें कोई औचित्य प्रश्न की बात नहीं दिखाई देती है। सभा के किसी सदस्य को हिन्दी में या अंग्रेज़ी में या किसी अन्य भारतीय भाषा में बोलने का हक है।

***सेठ गोविन्द दास:** आरम्भ में ही मैं अपने दक्षिण भारत के मित्रों को कुछ शब्द कहना चाहूंगा। जैसा कि मैंने अभी कहा था पिछले कुछ दिनों से मेरे लिये यह एक समस्या रही और मैं इस बात पर विचार करता रहा कि मैं अंग्रेजी में बोलूं या उस राज की भाषा में बोलूं जो आज इस सभा द्वारा स्वीकार की जायेगी।

श्रीमान, मुझे यह पूर्ण विश्वास है कि जहां तक हम सबका संबंध है हमारे विचार निश्चित हैं और मैं यह आशा नहीं करता हूं कि मैं किसी भी मित्र को अपने विचार का समर्थक बना लूंगा। अत: मैं यह नहीं चाहता हूं कि हमारे देश के इतिहास के अभिलेखों में यह बात रहे कि जब मैं हिन्दी को अपने देश की राज भाषा बनाने के पक्ष में भाषण दे रहा था मैं अंग्रेजी में, एक विदेशी भाषा में बोला और इस कारण मैं हिन्दी में बोलना चाहता हूं। मुझे विश्वास है कि यदि दक्षिण भारत के मेरे मित्र मेरे भाषण को ध्यानपूर्वक सुनेंगे तो मैं ऐसी भाषा में बोलने का प्रयत्न करूंगा कि मैं जो कुछ कहूंगा उसके एक-एक शब्द को वे समझ सकें।

***श्री एस. नागप्पा:** एक औचित्य प्रश्न है श्रीमान, माननीय सदस्य जो कुछ कहेंगे उसे हमें समझाये बिना ही विजय प्राप्त करना चाहते हैं। यदि वे यह चाहते हैं कि सभा उनका साथ दे तो क्या उनका यह कर्तव्य नहीं है.....।

***अध्यक्ष:** इसमें कोई औचित्य प्रश्न नहीं है। यह उनके निर्णय करने की बात है कि वे सभा का साथ चाहते हैं या नहीं।

***पं. गोविन्द मालवीय** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): क्या मैं इस सभा के उन सदस्यों की ओर से जो हिन्दी के समर्थक हैं यह निवेदन कर सकता हूं कि माननीय सदस्य अंग्रेजी में भाषण दें?

सेठ गोविन्द दास (सी.पी. और बरार : जनरल): सभापति जी, आज के दिन को मैं अपने जीवन के दिनों में अत्यन्त महत्वपूर्ण मानता हूं। आज जो कुछ हो रहा है उससे मुझे हर्ष भी कम नहीं है। मैं आपको भी इस बात के लिये धन्यवाद देता हूं कि मैंने समय-समय पर इस विषय को अनेक रूपों में आपके सामने उपस्थित किया और आपने मेरी बातें सुनीं। आपके पहले इस विधान परिषद् के प्रथम दिवस जब आपके ही प्रान्त के श्री सच्चिदानन्द सिंह हमारे सभापति थे उस दिन भी मैंने इस विषय को उठाया था। उसके पश्चात् मैं इस विधान परिषद् के सदस्यों को इस सम्बन्ध में बहुत कष्ट देता रहा हूं। इस विधान परिषद् में घूम-घूमकर इस हाल में मीलों चल कर और उनके घरों पर जाकर, उनके प्रान्तों में जाकर इस विषय पर मैं इस विधान परिषद् के सदस्यों से अनुनय विनय करता रहा हूं और मुझे इस बात पर भी बड़ा हर्ष है कि हमारे प्रधान मंत्री जी

[सेठ गोविन्द दास]

के शब्दों में 95 प्रतिशत बातों पर हम लोगों का एक मत भी हो गया है। परन्तु एक बात मैं अवश्य कहना चाहता हूं कि जिन विषयों पर हमारा मतभेद है, उन विषयों को भी हमें शान्ति से हल करना चाहिये। यदि हम ऐसे विषयों पर मत भी लें, मत विभाजन भी करावें, तो भी उससे किसी प्रकार की कटुता नहीं आने देनी चाहिये। हम लोगों ने प्रजातंत्र को स्वीकार किया है और प्रजातंत्र में बहुमत से ही सारे काम चल सकते हैं। यदि किसी विषय पर मतभेद होता है, तो उसका निर्णय केवल बहुमत से ही हो सकता है और बहुमत जो भी निर्णय करे, उसे अल्प मत वालों को सिर झुका कर स्वीकार करना चाहिये, बिना किसी प्रकार की कटुता के, आपने भी यही अपील की थी। अभी श्री गोपालस्वामी आयंगर जी ने भी यही अपील की और मैं भी यही अपील करना चाहता हूं।

मैं अपने दक्षिण भारत के माननीय सदस्यों और जिन प्रान्तों में हिन्दी भाषा नहीं बोली जाती, उन प्रान्तों के सब माननीय सदस्यों का अत्यन्त अनुग्रहीत हूं कि उन्होंने कम से कम एक बात स्वीकार कर ली। और वह बात यह है कि चाहे आप उसे राष्ट्र भाषा कहें, चाहे आप उसे राज्य भाषा कहें, वह हिन्दी ही हो सकती है और उसकी लिपि देवनागरी जैसा कि मैंने अभी कहा था। हमारे प्रधान मंत्री जी के शब्दों में भाषा का विषय 95 प्रतिशत हल हो गया है। जो पांच प्रतिशत बाकी है, उसमें कुछ सैद्धान्तिक बातें हैं। उन सिद्धान्त की बातों को यदि हमारे दक्षिण भारत के माननीय सदस्य और दूसरे प्रान्तों के सदस्य स्वीकार नहीं करते, तो उन्हें हमें भी वैसी ही स्वतंत्रता देनी चाहिये कि हम भी अपने सिद्धान्तों पर स्थित रहें और बिना किसी प्रकार की कटुता आये हम ऐसी बातों को बहुमत से निपटा लें।

अंकों का प्रश्न लीजिये। अंकों का एक प्रश्न है, जो यहां पर सभी लोगों के हृदयों में एक क्षोभ उत्पन्न कर रहा है। मेरी समझ में नहीं आता कि इसमें क्षोभ की क्या आवश्यकता है। मैं माननीय सदस्यों का ध्यान गत दो या तीन वर्षों की घटनाओं की ओर ले जाना चाहता हूं। जब पहले पहल मैंने भाषा और लिपि का प्रश्न उनके सामने रखा, तब अंकों का प्रश्न उन्होंने नहीं उठाया था। आज यह प्रश्न जितने महत्व का हमारे दक्षिण भारत के बन्धुओं को दिखता है, उस समय उन्होंने इस उस दृष्टि से नहीं देखा था। मैं उनकी स्मरण शक्ति को ताजा करने के लिये उस फार्मूला को यहां पढ़ना चाहता हूं, जिस पर उन्होंने बहुत बड़ी संख्या में हस्ताक्षर किये थे। यह फार्मूला यहां मैं पढ़ता हूं, हिन्दी और अंग्रेजी दोनों में।

"हम लोग इस बात के पक्ष में हैं कि भारत के विधान में यह रखा जाये कि राष्ट्र भाषा और राष्ट्र लिपि हिन्दी और देवनागरी होगी। राष्ट्र संघ पार्लियामेंट

में सब काम हिन्दी और देवनागरी अक्षरों के द्वारा अथवा उस समय तक के लिये, जो संघ पार्लियामेंट निश्चित करे, अंग्रेज़ी में होगी।"

अंग्रेजी में वह इस प्रकार है:

"We support the view that the Union Constitution should lay down that the national language and character shall be Hindi and Devanagari respectively, that in the Federal business parliament shall be transacted in Hindi written in Devanagari character or, for such period as the Federal parliament decides in English.'"

***काज़ी सैयद करीमुद्दीन** (मध्यप्रान्त और बरार: मुस्लिम): एक औचित्य प्रश्न है, श्रीमान्, सभा में यह कौन-सा लेख पढ़ा जा रहा है?

सेठ गोविन्द दास: यह वह डाकूमेंट है, जिस पर यहां के सदस्यों ने हस्ताक्षर किये थे और जो फार्मूला भाषा के सम्बन्ध में उन्होंने स्वीकार किया था।

इस फार्मूले पर साधारण सदस्यों के हस्ताक्षर नहीं थे। हमारे मद्रास के श्री गोपालस्वामी आयंगर ने इस पर हस्ताक्षर किये हैं। डॉ. पट्टाभि सीतारमय्या ने इस पर हस्ताक्षर किये हैं, प्रोफेसर रंगा, श्री अलगेसन, श्री थिरुमल राव, श्री अन्नत शयनम् आयंगर, श्री कला वैंकटा राव के इस पर हस्ताक्षर हैं।

***श्री कला वैंकटा राव** (मद्रास : जनरल): मेरा नाम क्यों लिया जा रहा है? मेरे प्रति जो निर्देश है, उसे मैं नहीं समझता हूं।

***सेठ गोविन्द दास:** मैंने जिस फार्मूला को अभी पढ़ा है, उस पर आपने हस्ताक्षर किये हैं। इस संबंध में आपको घसीटा गया है या आपका नाम आया है।

सेठ गोविन्द दास: मैं यह कहना चाहता हूं कि जिस समय आपने देवनागरी को स्वीकार किया थ, उस समय आपने देवनागरी के अंकों को भी उसके साथ स्वीकार किया था। अन्यथा आप उस समय भी यह कहते कि इसमें इंटरनेशनल न्यूमरल्स की बात रखी जानी चाहिये।

इसमें हमारे बम्बई के बन्धुओं के हस्ताक्षर हैं। श्री निजलिंगप्पा, श्री जेठे, श्री पाटस्कर, श्री गुप्ते इत्यादि के।

हमारे बंगाल के बन्धुओं के भी इस पर हस्ताक्षर हैं। श्री मैत्र, श्री मजूमदार, श्री गुहा, श्री सुरेन्द्र मोहन घोष और दूसरे सज्जन।

उड़ीसा के श्री विश्वनाथ दास, श्री बी. दास, श्री लक्ष्मी नारायण साहू, श्री युधिष्ठर सिंह, आसाम के श्री रोहिणी कुमार, श्री चालिहा ने भी इस पर हस्ताक्षर किये हैं। हिन्दी भाषा-भाषी सभी सदस्यों के इस पर हस्ताक्षर हैं।

[सेठ गोविन्द दास]

तो मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि यह न्यूमरल्स का जो सवाल उठा, वह सवाल बहुत पीछे और हाल का ही उठा हुआ है और इस सवाल को उस समय किसी ने महत्व नहीं दिया था।

मैं यह नहीं कहता कि आज इस विषय को उठाने का किसी को अधिकार नहीं है। अवश्य है। मेरे कहने का मतलब केवल यह है कि जब से स्वयं किसी समय देवनागरी लिपि को जिस रूप में वह है, उस रूप में स्वीकार करना चाहते हैं, तो उनको उसके अंकों को भी स्वीकार करना चाहिये; क्योंकि अंक लिपि के अन्दर होते हैं। लिपि के बाहर नहीं होते। और उस समय जब वे इस बात को स्वीकार कर रहे थे, तो आज बिना किसी रोष के, बिना किसी क्रोध के और बिना किसी क्षोभ के उन्हें कम से कम हमें अपने मन पर स्थित रहने की स्वतंत्रता देनी चाहिये। उन्होंने यदि अपना मत बदल दिया है और वह विरोध में वोट करना चाहते हैं, तो करें, परंतु हम यदि अपने पुराने मत पर स्थित हैं, तो उन्हें हमारे प्रति किसी रोष की भावना को नहीं रखना चाहिये।

अब दूसरी बातों को हम लें। श्रीयुत आयंगर साहब ने जो धारा यहां पर पेश की है, उसमें उन्होंने यद्यपि हिन्दी और देवनागरी लिपि को स्वीकार किया है, पर उसी के साथ उस धारा को ध्यानपूर्वक देखने से यह प्रयत्न दिखाई देता है कि वह समय दूर से दूर रखा जा रहा है, जब कि हिन्दी अंग्रेजी का स्थान ले सके। इस विधान-परिषद् में दो प्रकार के माननीय सदस्य दिखते हैं। एक वे हैं, जो हिन्दी और देवनागरी लिपि को स्वीकार करते हैं, परन्तु उसे दूर से दूर टालना चाहते हैं। दूसरे वे लोग हैं, जो अंग्रेज़ी के स्थान पर हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि को जल्दी से जल्दी ले आना चाहते हैं। इस सम्बन्ध में कांग्रेस की कार्यकारिणी का जो प्रस्ताव है, उसकी ओर मैं माननीय सदस्यों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति ने कहा है कि हमको धीरे-धीरे उस बात का प्रयत्न करना चाहिये कि 15 वर्ष में अंग्रेजी का स्थान हिन्दी ले ले और 15 वर्ष में या उसके पश्चात् इस देश में अंग्रेज़ी का स्थान न रहे। पर जो भाषण श्रीयुत गोपाल स्वामी आयंगर जी ने आज दिया है, उसमें उन्होंने कहा कि 15 वर्ष के बाद भी एक लम्बे समय तक हिन्दी को अंग्रेजी का स्थान नहीं लेने देना चाहिये। कम से कम हम लोगों का यह मत नहीं है, यह मैं कह देना चाहता हूं मेरी स्पष्ट राय है कि यदि अंग्रेजी को देश से जाना है, तो वह जल्दी से जल्दी जाये। यदि हम 15 वर्ष का समय स्वीकार करते हैं, तो यह मतलब नहीं है कि उससे पहले हिन्दी अंग्रेजी का कोई भी स्थान नहीं ले। आप जानते हैं, इस भवन के सारे सदस्य जानते हैं कि पहले हमारा यह मत था कि अंग्रेजी का स्थान हिन्दी कितने समय में ले, इस विषय को पार्लियामेंट पर छोड़ दिया जाये। जो फार्मूला मैंने अभी पढ़ा उसे जो हिन्दी भाषा नहीं हैं, उन्होंने भी स्वीकार किया था। फिर

हम पांच वर्ष पर आये। उस समय हमने सोचा था कि पांच वर्ष में यदि हम प्रयत्न करेंगे, तो हिन्दी को अंग्रेजी के स्थान पर प्रतिष्ठित कर सकेंगे। उसके बाद यहां पर राष्ट्र भाषा कन्वेन्शन हुआ। यद्यपि उसको हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने बुलाया था, पर उसमें किस प्रकार के महानुभाव आये थे, इस पर विचार कीजिये।

मैं कहना चाहता हूं कि इस प्रकार का कन्वेन्शन इससे पहले इस देश में कभी नहीं हुआ। उसमें बंगाल से डॉक्टर सुनीति कुमार चटर्जी और श्री सजनीकांत दास, जो कि बंगीय साहित्य परिषद् के मंत्री हैं, आये थे। उसमें कर्नाटक से भी श्रीयुत एस. कृष्ण शर्मा आये थे, जो कन्नड़ साहित्य परिषद् के मंत्री हैं। उसमें मलयालम के महाकवि बलातोल पधारे थे, जिनका मलयालम साहित्य में वहीं स्थान है जोकि बंगीय साहित्य में रवीन्द्र बाबू का था। मलयालम के श्री कुशान राजा भी उसमें आये थे। मराठी के महामहोपाध्याय श्री काने जी उसमें नहीं आ सके। उन्होंने उसके लिये अपना मत भेजा था। उड़ीसा से भी आर्तवल्लभ महन्ती आये थे। तामिल के श्री नीलकंठ शास्त्री और डॉक्टर राधबन जी आये थे। तेलगू के श्री सोमय्या जी आये थे और श्री विश्वनाथ सत्य नारायण जी पधारे थे। इस प्रकार इस परिषद् को यद्यपि हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने बुलाया था, पर इसमें अन्य भाषाओं के बड़े-बड़े विद्वानों ने भाग लिया था और उन्होंने यह तय किया कि अंग्रेजी का स्थान हिन्दी को दस वर्ष में लेना चाहिये। तो पांच वर्ष से हम दस वर्ष पर आ गये और हमने यह स्वीकार किया है कि धीरे-धीरे दस वर्ष में हिन्दी अंग्रेजी का स्थान ले ले, उसके पश्चात् जब हमारे दक्षिण भारत के बन्धुओं ने कहा कि दस वर्ष का समय कम मालूम होता है और यह पन्द्रह वर्ष होना चाहिये, तो हमने 15 वर्ष स्वीकार कर लिया। मैं यह नहीं कहता कि ऐसा करके हमने उन पर कोई अपकार किया है। उपकार तो उनका कह मानते हैं और उनके अनुग्रहीत हैं कि उन्होंने हिन्दी को राष्ट्र भाषा और देवनागरी को राष्ट्र लिपि स्वीकार किया, पर हम यह अवश्य कहना चाहते हैं कि उनके सुभीते के लिये हमने स्वीकार किया कि दस वर्ष के स्थान पर 15 वर्ष कर दिये जायें, तो हमें आपत्ति नहीं। हम इस बात को जानते हैं कि किसी व्यक्ति के जीवन में पांच या पन्द्रह या दस वर्ष कोई चीज हो सकते हैं, परन्तु देश के जीवन में यह समय बहुत बड़ा समय नहीं है। इसलिये हमने दस वर्ष के स्थान पर 15 वर्ष को स्वीकार किया। सवाल यह है कि हम 15 वर्ष में अंग्रेज़ी के स्थान पर हिन्दी को लाना चाहते हैं या पन्द्रह वर्ष में भी नहीं। कांग्रेस कार्यकारिणी ने इस सम्बन्ध में अपना स्पष्ट मत दिया है जो राष्ट्र भाषा कन्वेन्शन हुआ, उसने भी इस विषय में साफ तौर पर कहा है। फिर आज जब श्री गोपालस्वामी आयंगर जी यह कहते हैं कि वह तो 15 वर्ष के बाद भी एक बड़े लम्बे समय को देखते हैं, जिस समय कि हिन्दी अंग्रेज़ी का स्थान ले सकेगी। मैं तो बड़े अदब के साथ उनसे यह कहना चाहता हूं कि

[सेठ गोविन्द दास]

कम से कम हम लोग इस बात को स्वीकार नहीं करते। यह हमारा स्पष्ट रूप से निवेदन है। दूसरा विषय यह है।

तीसरा विषय जिस पर मैंने सुधार पेश किया है, वह यह है कि जिन प्रान्तों में हिन्दी को स्वीकार कर लिया गया है और जिन प्रान्तों की अदालतों में आज हिन्दी चल रही है, वहां पर हम क्यों अंग्रेज़ी को थोपना चाहते हैं। आप संयुक्त प्रान्त को ही लीजिये। वहां पर सारे विलों के मसविदे, सारे प्रस्ताव, सारे प्रश्न हिन्दी में ही होते हैं। अब जो आयंगर जी की धारा यहां पेश हो रही है, उसमें तो यह कहा गया है कि सारे बिल, सारे इस तरह के जितने कार्य हैं, वह अंग्रेज़ी में हों। यह तो मामले को आगे न बढ़ाकर पीछे हटाना हुआ, इसको हम भला कैसे स्वीकार कर सकते हैं कि जिन प्रान्तों में अभी भी हिन्दी में काम चल रहा है, वहां भी अंग्रेज़ी को लादा जाये। जहां कचहरियों में अभी भी हिन्दी में काम चल रहा है, वहां भी अंग्रेज़ी को लादा जाये। यह तीसरा विषय है, जिसमें हम बहुत बड़ा मतभेद रखते हैं, अपने दक्षिण भारत के बन्धुओं से।

अब मुझे कुछ अन्य बातें कहनी हैं। हम हिन्दी का पक्ष लेने वालों पर एक आक्षेप होने वाला है। कि हम इस विषय को साम्प्रदायिकता की दृष्टि से देखते हैं। यह आक्षेप हमारे बड़े-बड़े नेताओं ने हम पर किया है। मैं उनसे कहना चाहता हूं कि जहां तक हम लोगों का सम्बन्ध है, हम इस विषय को साम्प्रदायिकता की दृष्टि से जरा भी नहीं देखते। हम इस विषय को राष्ट्रीय दृष्टि से देखते हैं। मैं अपने सम्बन्ध में आपसे कह सकता हूं कि 30 वर्ष के सार्वजनिक जीवन में मैं आज तक किसी भी साम्प्रदायिक संस्था का सदस्य नहीं रहा हूं। यह बात मौलाना अबुल कलाम साहब जानते हैं कि जब सन् 21 में खिलाफत का आन्दोलन चला था, तो मैं स्वयं सैंट्रल खिलाफत कमेटी का सदस्य था। दूसरे लोगों को आप ले लीजिये। जैसे टंडन जी हैं और दूसरे लोग, जो आज हिन्दी के आन्दोलन में किसी प्रकार का भाग ले रहे हैं, क्या कभी उनका किसी प्रकार की भी साम्प्रदायिक संस्था से सम्बन्ध रहा है।

अपने सम्बन्ध में इस विषय से सम्बन्ध रखने वाली दो बातें मैं आपको और बताना चाहता हूं। एक जमाना था कि जब हमारे जबलपुर नगर में हिन्दू मुसलमानों के दंगे हुआ करते थे। उस समय हमारे यहां एक मस्जिद तोड़ दी गई। उस मस्जिद को मैंने वहां अपने धन से बनवा दिया। हमारे प्रान्त के खंडवा नगर में कुछ लाख रुपया लगाकर मेरी माता के नाम पर मेरे पिता जी ने एक धर्मशाला बनवाई है। इस धर्मशाला में लक्ष्मीनारायण के मन्दिर की स्थापना की गई है। इस मंदिर की प्रतिष्ठा विनोवा भावे जी ने की। इस मन्दिर में लक्ष्मीनारायण की मूर्ति के साथ सब धर्मों के ग्रन्थों की भी स्थापना की गई है। वहां कुरान की स्थापना की गई है, बाईबिल की स्थापना की गई है बौद्ध धर्म के ग्रंथों की स्थापना की गई है, जैन धर्म के ग्रंथों की स्थापना की गई है, सिख धर्म और पारसी धर्म के ग्रन्थ भी वहां स्थापित हैं। सब धर्मों के ग्रन्थों की वहां पर इज्जत के साथ स्थापना की

गई है। हिन्दी आन्दोलन करने वालों को साम्प्रदायिक कहना यह एक बड़ा भारी अन्याय है। उर्दू भाषा केवल मुसलमानों की ही अकेली भाषा है, यह मैं नहीं कहता। मैं यह मानता हूं कि उर्दू भाषा में इस देश के बड़े-बड़े हिन्दू विद्वानों ने, कवियों ने भी रचना की है। मगर मैं एक बात कहे बिना नहीं रह सकता कि उर्दू भाषा अधिकतर देश के बाहर की चीजों को ही देखती रही है। आप उर्दू के साहित्य को अच्छी तरह देख सकते हैं। साहित्य का मुझे थोड़ा बहुत ज्ञान है। आप उर्दू साहित्य को देखेंगे, तो आपको कहीं भी हिमालय का वर्णन नहीं मिलेगा। आपको उसकी जगह कोह काफ का वर्णन मिलेगा। हमारे देश की कोयल को आप कभी उसके साहित्य में नहीं पायेंगे। आपको सिर्फ बुलबुल का वर्णन मिलेगा। भीम और अर्जुन की जगह पर आपको रुस्तम का वर्णन मिलेगा। जिसका इस देश से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। इसलिये मैं कहना चाहता हूं कि हम पर साम्प्रदायिकता का जो आक्षेप हो रहा है, वह बिल्कुल गलत है। मैं आपसे यह बात उर्दू के किसी द्वेष की वजह से नहीं कह रहा हूं। हम उर्दू से प्रेम रखते हैं और बराबर उससे हमारा प्रेम रहेगा। मगर मैं यह अवश्य कहूंगा। कि हिन्दी के समर्थक साम्प्रदायिक नहीं, जो उर्दू का समर्थन करते हैं, वे साम्प्रदायिक हैं।

हमारा देश सेक्यूलर स्टेट है और हम सब लोग इसको स्वीकार करते हैं। हम सब धर्म वालों को एक ही दृष्टि से देखते हैं। हम किसी धर्म के बीच में रोड़ा अटकाना नहीं चाहते, पर हम इस बात को मानते हैं कि सेक्यूलर स्टेट होते हुए भी हमारे देश में दो संस्कृति हैं या नहीं।

चीन में भी मुसलमान रहते हैं, रूस में भी मुसलमान रहते हैं, मगर चीन और रूस के मुसलमानों और वहां के अन्य धर्मावलंबियों में कोई भेद नहीं है। वहां के निवासियों के नाम भी हम देखें, तो हमें कोई अन्तर मालूम नहीं पड़ता। उनकी पोषाक, उनकी भाषा और उनकी संस्कृति एक ही है। यह बात सत्य है कि सेक्यूलर स्टेट को हमने मान लिया है। मगर हमने इसका यह अर्थ तो कभी नहीं समझा कि सेक्यूलर स्टेट मानना अनेक संस्कृतियां मानना है। यह एक पुराना देश है और इसका पुराना इतिहास है। इस देश में हजारों वर्षों से एक ही संस्कृति चली आई है और वह परम्परा अभी तक कायम है। इस परम्परा को रखने के लिये और इस बात का खंडन करने के लिये कि हमारी दो संस्कृतियां हैं, हम इस देश में एक भाषा और एक लिपि रखना चाहते हैं।

प्रान्तीय भाषाओं से हमारा कोई द्वेष नहीं है। प्रान्तीय भाषाओं की तरक्की बगैर केन्द्रीय भाषा की भी उन्नति नहीं हो सकती। यह बात मैं अपने मित्रों को खुश करने के लिये नहीं कह रहा हूं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन में सभापति के नाते मैंने जो भाषण मेरठ में दिया था, उस वक्त भी मैंने यह बात साफ कर दी थी कि

[सेठ गोविन्द दास]

हर प्रान्तीय भाषा की भी उन्नति होनी चाहिये और अपने-अपने प्रान्त में उसका सर्वोच्च स्थान होना चाहिये। वहां की शिक्षा का माध्यम, वहां की अदालतों की भाषा, वहां की असेम्बली की भाषा, प्रान्तीय भाषा हो। प्रान्तीय भाषा के सिवाय प्रान्तों में रहने वाली अन्य जनता की भाषा को उस प्रान्त में मान्य न किया जाये, यह भी मैं नहीं कहता। पर जिस प्रकार कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने अपने प्रस्ताव में कहा और स्वीकार किया है कि अगर किसी प्रान्त में 20 प्रतिशत व्यक्ति इस बात की इच्छा करें कि अमुक भाषा उस प्रान्त में स्वीकार की जाये, तभी यह हो। अगर एक प्रतिशत, दो प्रतिशत व्यक्ति इस बात की मांग करें कि उनके प्रान्त में दूसरी भाषा को भी स्वीकार किया जाये तो यह एक प्रकार से उस प्रान्त की भाषा के विकास में बाधा डालना होगा। इसलिये मैंने एक और संशोधन भेजा है, जिसमें यह कहा गया है कि अगर किसी प्रान्त में 20 प्रतिशत व्यक्ति यह मांग करें कि अमुक भाषा वहां और स्वीकार की जाये, तो जैसा कि कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने अपने एक प्रस्ताव में मान लिया है, वहां पर यह बात की जा सकती है। अंग्रेज़ी का स्थान हिन्दी जल्दी से जल्दी ले ले, यह हमारा सबसे बड़ा लक्ष्य है। इसके लिये मैंने अपने संशोधन में जो बात कही है, वह यह है कि एक कमीशन स्थापित हो। एक पार्लियामेंटरी कमेटी स्थापित की जाये। एक प्रकार की दो चीजें न हों। बल्कि एक ही चीज हो, यानी पार्लियामेंटरी कमेटी। पार्लियामेंटरी कमेटी को यह काम सौंप दिया जाये कि वह 15 वर्ष के अन्दर धीरे-धीरे हिन्दी को अंग्रेज़ी के स्थान पर किस प्रकार ला सकती है।

अन्त में मैं कहना चाहता हूं कि स्वतंत्रता के साथ, स्वतंत्र भारत कैसा होगा, इसकी भी हमने कल्पना की थी। इस देश की जनता ने भी कल्पना की थी। वह कल्पना तब तक पूरी नहीं हो सकती, जब तक कि हम भाषा के प्रश्न को हल न कर लें। स्वराज्य का अर्थ इस देश के लोग तभी समझेंगे, जब कि भाषा का प्रश्न पूरी तरह से हल हो जायेगा।

मुझे इस बात की बड़ी खुशी है कि हिन्दी भाषा को इस देश के सभी निवासी राष्ट्र भाषा के रूप में, राज्य भाषा के रूप में, स्वीकार करने के लिये तैयार हैं। हमें इस बात का प्रयत्न करना चाहिये कि भाषा के विषय में किसी प्रकार की कटुता न आने पावे। जहां तक हिन्दी का सवाल है, उसको पंडित जवाहरलाल नेहरू का भी आशीर्वाद है। और आज नहीं, यह आशीर्वाद उसे 18 वर्ष पहले प्राप्त हो चुका था। इस सम्बन्ध में उन्होंने ने 18 वर्ष पहले जो एक पत्र लिखा था, वह मैं आपको पढ़कर सुनाता हूं।

कोलम्बो 16.5.31

मुझे बहुत खेद है कि मैं इस समय मदुरा नहीं आ सकता। मैं चाहता था कि मैं वहां आऊं और तामिलनाद प्रान्त के भाइयों से मिलूं और अगर उसकी

कुछ सेवा कर सकूं, तो वह करूं। खास कर मैं हिन्दी सम्मेलन में हिस्सा लेना पसन्द करता। हिन्दी हमारी राष्ट्र भाषा होना तो पूरी तौर से तय हो गया है और कांग्रेस का कार्य भी अब बहुत कुछ हिन्दी ही में होता है। यह बहुत खुशी की बात है कि तामिलनाद प्रान्त में हिन्दी का प्रचार खूब हो रहा है। इस शुभ कार्य में मैं खुशी से सहायता देता, लेकिन मजबूरी से नहीं आ सकता।

मैं आशा करता हूं कि हिन्दी सम्मेलन सफलता से होगा और उसके कारण हिन्दी प्रचार और भी बढ़ेगा।

—जवाहरलाल नेहरू

यह पंडित जी ने 18 वर्ष पहले लिखा था और मुझे इस बात को देखकर हर्ष होता है कि 18 वर्ष पहले उन्होंने जो भविष्यवाणी की थी, उसको आज हम पूरा करने के लिये यहां पर एकत्रित हुए हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** अध्यक्ष महोदय,...

***श्री देशबन्धु गुप्तः** मैं आशा करता हूं कि माननीय सदस्य संस्कृत में भाषण देंगे।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** सभा के समक्ष बड़ा ही महत्वपूर्ण विषय है। मैं समझता हूं कि इतने बड़े महत्वपूर्ण विषय पर, जिसका प्रभाव चौंतीस करोड़ व्यक्तियों पर पड़ता है, कोई झगड़ा नहीं होना चाहिये, परन्तु साथ ही साथ मैं यह भी कहूंगा कि कोई अनुचित अथवा जल्दबाजी में समझौता भी नहीं होना चाहिये। भारत की विशाल जनसंख्या की तुलना में ऐसे समझदार व्यक्तियों का यह कार्य नहीं है कि यहां आकर परस्पर सौजन्य प्रकट करें और केवल समझौते की भावनावश किसी ऐसी बात को स्वीकार करें, जिसका बाहर के अनेक व्यक्तियों पर प्रभाव पड़ता हो (वाह, वाह)।

श्रीमान, मैं निवेदन करता हूं कि हम उन क्षेत्रों पर ध्यान नहीं दे रहे हैं, जिनको संक्षिप्त रूप में अहिन्दी भाषा भाषी क्षेत्र कहा जाता है। यह कहने से काम नहीं चलेगा कि कुछ सदस्यों ने समझौते में, करार में, भाग लिया हे। ऐसा करार लोगों के लिये मान्य नहीं होगा और वे उसे स्वीकार नहीं करेंगे। मैं निवेदन करता हूं कि ऐसे विषय में हमें सतर्क होकर तथा विभिन्न अनुभवों के आधार पर कार्य करना चाहिये। किसी प्रकार की विवशता नहीं होनी चाहिये, स्वतंत्र स्वेच्छाकृत भावनाओं के आधार पर राष्ट्रभाषा होनी चाहिये। यदि हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार की जाने वाली है, तो इसके लिये स्वतंत्र तथा स्वेच्छाकृत इच्छा होनी चाहिये। इसके पूर्व कि हिन्दी को अंतिम रूप में अपनी राष्ट्रभाषा स्वीकार किया जा सके, लोगों को उसके सौन्दर्य तथा अन्य गुणों को समझ लेना चाहिये। मुझसे पहले बोलने वाले मेरे विद्वान मित्र जब हिन्दी में भाषण दे रहे थे, मैंने

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

उन लोगों तक को, जो थोड़ी बहुत हिन्दी जानते हैं, यह कानाफूसी करते सुना कि वह भाषा समझ में नहीं आ रही है। अत: मैं निवेदन करता हूं कि हम एक दम हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का प्रयत्न न करें।

जिस संशोधन को मैंने सभा के समक्ष प्रस्तुत करने का साहस किया है, वह संशोधन संख्या 277 है। उस संशोधन का पढ़ना आवश्यक नहीं है, क्योंकि मुझे विश्वास है कि माननीय सदस्य उसे पढ़ चुके हैं। मेरे संशोधन का मुख्य प्रयोजन यह है कि अखिल भारतीय भाषा की हम एक दम घोषणा न करें। मेरा उद्देश्य यह है कि अंग्रेजी भाषा का जिन प्रयोजनों के लिये प्रयोग होता था, उन सब प्रयोजनों के लिये भारत की राज भाषा के रूप में जब तक प्रयोग होता रहे, तब तक किसी ऐसी अखिल भारतीय भाषा का विकास न हो, जिसमें विज्ञान, गणित, साहित्य, इतिहास, दर्शन और राजनीति संबंधी भिन्न-भिन्न विषयों के लिये विचारों की अभिव्यक्ति हो सके। मैं निवेदन करता हूं कि इस विषय पर इसी रीति से विचार होना चाहिये। सदैव के लिये अखिल भारतीय प्रयोजनों के लिये भाषा की उपयुक्तता का विषय एक ऐसा विषय नहीं होना चाहिये, जिसे निर्वाचकों के बिना किसी आदेश के 315 सदस्यों द्वारा विनिश्चित होने के लिये छोड़ दिया जाये। सौजन्य और उदारता से प्रेरित हो जाना सरल है। यह कोई विवाह संस्कार या भोज का विषय नहीं है, जहां हम उदारता दिखा सकें। यह एक ऐसा विषय है, जो जनता द्वारा स्वयं अपनी इच्छा से स्वीकार किया जाने वाला विषय होना चाहिये।

मैं निवेदन करता हूं कि जहां तक हिन्दी भाषा का संबंध है, उसे अभी अपना दावा पूरा करना है। हिन्दी भाषा के समर्थकों को मैंने यह कहते सुना है कि यही समय है, जब कि हमें हिन्दी को राष्ट्र भाषा के रूप में स्वीकार कर लेना चाहिये। मैंने यह भी कहते हुए सुना है कि यदि हम इस समय हिन्दी को स्वीकार नहीं करेंगे तो उसका अवसर सदैव के लिये खो जायेगा। यदि यही बात है, तो हिन्दी को तुरन्त स्वीकार करने का पक्ष सबल नहीं है। यदि यह सत्य है कि यह सभा, उदारहृदया तो वह है ही, लोक सुविधा का विचार किये बिना, आधुनिक संसार में अखिल भारतीय भाषा के आवश्यक गुणों पर विचार किये बिना, स्वेच्छाकृत रीति से स्वीकार करना चाहिये, तो मैं समझता हूं कि लोक मत का सुनिश्चयन कर लेना चाहिये। पर मैं यह देखता हूं कि जहां सभा को सावधान करना चाहिये और व्यावहारिक आधार ग्रहण करना चाहिये, वहां इस सभा की आवश्यकता से अधिक उदार हो जाने की प्रवृत्ति हो जाती है।

हम कह चुके हैं कि हम राष्ट्रीयकरण चाहते हैं। मैं आशा करता हूं कि यह स्पष्ट हो चुका है कि आप एक दम राष्ट्रीयकरण नहीं कर सकते हैं और वह बहुत ही अवांछनीय होगा। रेलों में से हमने कक्षान्तर को मिटाना चाहा। चार कक्षों के हमने तीन कक्ष कर दिये। मुझे विश्वास है कि अब यह सबको स्पष्ट हो

चुका है कि हमें चतुर्कक्ष प्रणाली को फिर अपनाना होगा। पूंजीवाद को हम एक दम मिटाना चाहते हैं। मेरे विचार से अब यह समझ लिया गया है कि यद्यपि पूंजीवाद दोषपूर्ण है, पर उसकी अभी आवश्यकता है, उसमें रूप भेद कर देना चाहिये, पर उसे मिटाना नहीं चाहिये। इसी प्रकार से औद्योगीकरण के क्षेत्र में असंयत वार्ता के कारण पूंजी रुक गई है। अतः मेरा यह विचार है कि भाषा के विषय में हमें बड़ी सावधानी से आगे बढ़ना चाहिये।

मेरा सुझाव यह है कि अंग्रेज़ी जब तक बनी रहे, तब तक अखिल भारतीय भाषा का विकास न हो। विधायी मत द्वारा आप किसी भाषा को आधुनिक संसार के लिये उपयुक्त नहीं बना सकते हैं। भाषा की उपयुक्तता के लिये कई बातें अपेक्षित हैं। उसके लिये महान लेखकों, महान विचारकों, महान व्यक्तियों, वैज्ञानिकों, राजनीतिज्ञों, दार्शनिकों, साहित्यिकों, नाटक लेखकों तथा अन्य व्यक्तियों की आवश्यकता है। किसी प्रकार का आक्षेप किये बिना मेरा यह विश्वास है कि हिन्दी एक ऐसी भाषा है, जो इस रूप में अभी प्रारम्भिक स्थिति में है।

अब भारत स्वतंत्र है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में आधुनिक बलों से हमें लड़ना-झगड़ना है। मैं निवेदन करता हूं कि इस आधुनिक संसार में हम अंग्रेज़ी को नहीं हटा सकते हैं। अन्य भाषायें हम चाहे जो कुछ रखें, हमें अंग्रेज़ी रखनी चाहिये। अंग्रेज़ी अनिवार्य है। पर इस विषय में कुछ निम्न भावनाओं का प्रदर्शन कर रहे हैं। मेरा विचार है कि भाषा के विषय में कोई निम्न भावना नहीं होनी चाहिये।

***एक माननीय सदस्यः** उच्च भावना!

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** चाहे वह उच्च भावना हो, पर वह भी बुरी बात है। वह एक प्रकार की दुर्बलता होगी। मैं निवेदन करता हूं कि अंग्रेज़ चले गये हैं; अंग्रेजों का प्रभुत्व हटाने योग्य था। पर उनकी भाषा के सम्बन्ध में क्या विचार है? क्या अंग्रेजी भाषा ब्रिटेन की भाषा है? मैं निवेदन करता हूं कि वह संसार की भाषा है। अन्य कई उपनिवेशों तथा अन्य कई देशों को लीजिये। जापान को ही लीजिये। जापान ने सोचा कि उसे संसार में उन्नति करनी चाहिये। उसने स्वेच्छा से अंग्रेजी भाषा को राजभाषा स्वीकार किया। वे अमरीका तथा अन्य स्थानों को गये और अंग्रेजी सीखी और अंग्रेजी भाषा की सहायता से उनके लिये अंग्रेज़ी विज्ञान, आधुनिक विचार तथा संसार की क्रियाओं में प्रवेश करने का मार्ग मिला। दुर्भाग्यवश यदि जापान गत युद्ध में प्रवेश न होता, तो जापान संसार के बड़े राष्ट्रों में होता। इसी कारण मैं यह निवेदन करता हूं कि अंग्रेजी अनिवार्य होनी चाहिये। संभव है कि यह एक अरुचिकर आवश्यकता हो; पर है यह एक आवश्यकता।

मेरे मत के अनुसार राष्ट्र भाषा चुनने का विषय दो शर्तों पर निर्भर होना चाहिये। इन शर्तों को रखने के पूर्व माननीय सदस्यों से मैं स्थिति पर विचार करने के लिये निवेदन करूंगा। मैं अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों के दृष्टिकोण से कह रहा हूं—यदि

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

आपको हिन्दी सीखनी है, तो एक विदेशी भाषा के रूप में आपको उसे सीखना है। अपनी मातृभाषा आप बिना साक्षरता के सीख सकते हैं; परन्तु किसी विदेशी भाषा को आप पुस्तक द्वारा ही सीख सकते हैं। किसी अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों में सर्वप्रथम किसी बालक को अपनी मातृभाषा में साक्षर होना चाहिये और उसके बाद ही वह अखिल भारतीय भाषा हिन्दी सीख सकता है।

अत: मैं निवेदन करता हूं कि इसके पूर्व कि हम भारत की जनता पर अनिवार्य अखिल भारतीय भाषा का आरोपण करें, यह आवश्यक है कि उसे अपनी मातृभाषा में साक्षर पहले से होना चाहिये। पचास वर्ष घोर परिश्रम करने के पश्चात् और प्राथमिक शिक्षा के बारे में चालीस वर्ष से अधिक काल तक वार्ता करने के पश्चात् हम अपनी जनता में 13 या 15 प्रतिशत से अधिक साक्षर नहीं बना पाये हैं। हमारी जनता में कम से कम 45 प्रतिशत पूर्णतया निरक्षर हैं। क्या यह बात तर्क के सामने टिक सकती है कि आप भारत की जानता को राजभाषा के रूप में हिन्दी एकदम सिखा सकते हैं? आप ऐसा नहीं कर सकते। मैं निवेदन करता हूं कि भारत की जनता पर राष्ट्रभाषा का आरोपण करने के पूर्व यह आवश्यक है कि जनता को साक्षर बनाने का आन्दोलन हो और जो लोग नहीं चाहते हैं, उन पर एक विदेशी भाषा का आरोपण करने के पूर्व प्रत्येक क्षेत्र में साक्षरता का अधिकतम प्रतिशत होना चाहिये।

दूसरी शर्त, जिसे मैं विनिहित करना चाहूंगा, वह यह है कि आप प्रान्तों का भाषा के आधार पर निर्माण करें। इसका कारण सरल है। इस राजकीय समझौते के मसौदे में हम यह अभिज्ञात करते हैं कि प्रादेशिक भाषायें होनी चाहियें। यदि हम प्रादेशिक भाषायें रखते हैं, तो एक ही प्रान्त में भिन्न-भिन्न भाषाओं के बोलने वाले भिन्न-भिन्न लोगों में परस्पर झगड़े होंगे। इन सब कष्टों से बचने के लिये सामान्यतया एक भाषा बोलने वाले लोगों को एक प्रान्त में रखना चाहिये। यदि हम ऐसा नहीं करेंगे, तो यह कठिनाई होगी कि किसी क्षेत्र में अल्पसंख्यक वर्ग पर बहुसंख्यक वर्ग द्वारा अत्याचार होगा।

मैं उन अनेक वाद-विवादों में नहीं पड़ना चाहता हूं, जो इस समय हो रहे हैं। मेरा विश्वास है कि जब हम इस आधार पर प्रान्तों का निर्माण करेंगे, तो सब वाद-विवाद शान्त हो जायेंगे। यदि हम इस समय ऐसा नहीं करते हैं, तो यह कभी नहीं हो सकेगा और अगणित कठिनाइयां उठ खड़ी होंगी। यदि प्रान्तों का भाषा के आधार पर निर्माण कर दिया जाता है, तो वे एक विदेशी अखिल भारतीय भाषा पर विचार कर सकेंगे। मैं निवेदन करता हूं कि भारत जैसे आधुनिक राज्य के लिये हमें एक आधुनिक भाषा की अपेक्षा है। वह एक ऐसी मिश्रित भाषा होनी चाहिये जिसमें भारत की समस्त भिन्न-भिन्न भाषाओं का योग हो। मैं वह व्यक्ति नहीं हूं, जो भारत की एक राजभाषा में विश्वास न करता हो पर तथ्यों की मैं अपेक्षा नहीं कर सकता हूं। देशभक्ति की भावनाओं से प्रेरित होकर भी मैं तथ्यों

की ओर से आंखें नहीं मीच सकता हूं। अतः किसी उपयुक्त भाषा का विकास होने के लिये समय देना चाहिये हमारा संविधान और हमारी विधियां अंग्रेज़ी में हैं और उसके स्थान में दूसरी भाषा रखने के लिये हम केवल पन्द्रह वर्ष का उपबन्ध कर रहे हैं। यदि आप अपनी विधियों का ही अनुवाद करने का प्रयास करेंगे, तो आपको विदित होगा कि सही-सही अनुवाद करना कितना कठिन है।

आखिर कोई यथार्थवादी हल होना चाहिये। मैं निवेदन करता हूं कि यदि हम यथार्थवादी रूप में कार्य नहीं करेंगे, तो फल यह होगा कि कई अहिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तों में प्रतिक्रिया होगी। उस भाषा को सीखना और अखिल भारतीय भाषा में कृत्यों का निर्वहन करने के लिये उस भाषा पर पर्याप्त अधिकार करना उनके लिये कठिन हो जायेगा। इस एक बड़ी बात को याद रखना है कि स्वयं हिन्दी की उन्नति करनी होगी। यह पन्द्रह वर्षों का विषय नहीं है, यह तो प्रयोग तथा अनुभव का विषय है। ऐसे महान लेखक और महान विचारकों के होने में कई वर्ष लगेंगे, जो इसकी उन्नति करेंगे और दूसरी बात यह है कि लोगों को केवल वार्तालाप की हिन्दी बोलने के लिये ही नहीं—जो कि बहुत सरल है—वरन् साहित्यिक हिन्दी सीखने के लिये, जो बहुत ही कठिन है बहुत समय की अपेक्षा है।

मैं निवेदन करता हूं कि प्रस्थापित अनुच्छेद 301ख के एक खंड, खंड (3) में यह उपबन्ध किया गया है कि अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों के दावों को जहां तक हो सकेगा, लोक सेवाओं के लिये व्यक्ति चुनने में माना जायेगा। मैं निवेदन करता हूं कि इससे पर्याप्त रूप में कठिनाई उत्पन्न होगी। अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र में के एक लड़के का उदाहरण लीजिये। उसे अपनी मातृभाषा सीखनी होगी, जो प्रादेशिक भाषा से भिन्न हो सकती है। संभव है, उस लड़के को फिर कोई ऐसी मातृभाषा सीखनी पड़े जो प्रादेशिक भाषा से भिन्न हो। इस प्रकार उसे आरम्भ में दो भाषायें सीखनी होंगी। यदि वह लोक सेवाओं में तथा आन्तरिक राजनैतिक क्षेत्र और बाह्य क्षेत्र में भी उच्चतर सम्मान प्राप्त करने का अभिलाषी है, तो उसे अंग्रेजी सीखनी होगी और उसके बाद उसे राजभाषा हिन्दी सीखनी होगी। शक्ति के इस महान ह्रास की ओर तनिक विचार करिये, जो हमारे लड़के और लड़कियों को इन भाषाओं को सीखने में करना होगा। फल यह होगा कि निम्नतर साधन वाले मध्य वर्ग के व्यक्ति अंग्रेजी सीखने से वंचित रह जायेंगे। यकायक अखिल भारतीय भाषा स्वीकार करने का परिणाम यह होगा कि अंग्रेजी की पाठशालायें कम हो जायेंगी और हिन्दी की पाठशालायें अधिक हो जायेंगी यद्यपि हम एक वर्गहीन समाज बनाने के प्रयत्न में हैं, पर इस प्रकार धनी और अधिक धनी हो जायेंगे और निर्धन अधिक निर्धन। केवल धनी लोगों के बच्चे ही अंग्रेजी पढ़ सकेंगे और इस कारण उन विदेशी क्षेत्र की कार्रवाइयों में, उन अखिल भारतीय क्षेत्र की कार्रवाइयों में, जिनमें पश्चिमी विज्ञान और कला से लाभ उठाने के लिये अंग्रेजी भाषा का ज्ञान अपेक्षित है, केवल धनी वर्ग के बच्चे ही भाग ले सकेंगे। निर्धन तथा मध्यम

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

वर्ग इससे वंचित रहेंगे। इस यकायक परिवर्तन का यह प्रभाव होगा। जब अंग्रेज़ यहां आये, तो राजभाषा फारसी थी और अंग्रेजी भाषा का शिक्षा के माध्यम के रूप में पुर:स्थापन करने के लिये उन्होंने साठ वर्ष तक प्रतीक्षा की। और फिर उन्होंने उसे अनिवार्य नहीं बनाया, वे बड़ी सावधानी से आगे बढ़े। मैं निवेदन करता हूं कि हमें उनके अनुभव से लाभ उठाना चाहिये। मैंने अपने संशोधन में कहा है कि प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिये और जब हम यह देखें कि प्रत्येक राज्य में कम से कम 60 प्रतिशत अपनी मातृभाषा में साक्षर हैं और जब कि प्रान्त भी भाषा के आधार पर विभाजित कर दिये गये हैं, तब एक आयोग होना चाहिये और आयोग के प्रतिवेदन पर विधान-सभाओं, विधान-परिषदों तथा संसद में भी वाद-विवाद हो और उसके बाद काफी समय तक वे वाद-विवाद देश के समक्ष रहने दिये जायें और तब हम अधिक वास्तविक तथा यथार्थ रूप में यह जान सकेंगे कि क्या होना चाहिये। और तभी जनता के लिये राष्ट्रभाषा का चुनना या विकास करना सरल होगा। यदि हम इस प्रकार अग्रसर होंगे, तो राष्ट्रभाषा को स्वीकार करना और उसको चुनना सरल होगा, अन्यथा इससे बड़ी कठिनाइयां पैदा होंगी। इन विषयों पर अधिक समय तक विचार नहीं किया जा सकता है, क्योंकि इस विषय पर विनिश्चय अधिक व्यापक वाद हेतुओं पर आश्रित होना चाहिये।

मैं निवेदन करता हूं कि हिन्दी के साथ-साथ अन्य भाषाओं का भी दावा है, मैंने एक संशोधन प्रस्तुत किया है कि बंगला को अपनी मांगें मिलनी चाहिये। यह केवल एक सुझाव के रूप में है कि समस्त अधिराज्य में बंगला अत्युन्नत भारतीय भाषा है। यह वे लोग स्वीकार करते हैं, जिनको इस विषय पर बोलने का अधिकार है। मैं निवेदन करता हूं कि प्रथम बंगला पुस्तक 'चर्या' बारहवीं शताब्दी में प्रकाशित हुई थी। संस्कृत को छोड़कर खोजी हुई पुस्तकों में यह सबसे प्राचीन भारतीय पुस्तक है। इसके बाद 16वीं और 17वीं शताब्दियों में कई बंगला पुस्तकें निकली थीं। इसके बाद अनेक लेखक हुये—चारुचन्द्र दत्त, बंकिम चटर्जी और अन्य अनेक लेखक और अच्छे लेखकों की महान कोटि को छोड़कर स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ टैगोर, जिन्होंने बंगला साहित्य को बहुत ही सुन्दर देन दी। उन्होंने बहुत कुछ लिखा और बंगला साहित्य को एक बड़ी देन दी और विचारों के लिये वह सर्वोत्तम साधन है। और मेरा विश्वास है कि यदि आप गुणावगुणों के आधार पर भाषा का विचार करें, तो बंगला का दावा सबसे पहले है। अन्य भाषाओं की उपयोगिता तथा सौन्दर्य का मैं अपकर्ष करना नहीं चाहता हूं, मैं तो केवल बंगला के दावे को उचित स्तर पर रख रहा हूं। मैं निवेदन करता हूं कि बंगला भाषा बहुत उन्नत है और उसके साथ केवल यही एक कठिनाई है कि उसको अधिकांश व्यक्तियों द्वारा बोला नहीं जाता है। परन्तु राजभाषा का निर्णय केवल एक इस तथ्य पर ही नहीं करना चाहिये कि उसे अधिकांश व्यक्ति बोलते हैं। आधुनिक विचारों, वैज्ञानिक, साहित्यिक तथा

अन्य विचारों को अभिव्यक्त करने की भाषा की उपयुक्तता भी एक महत्वपूर्ण बात होनी चाहिये। बंगला भाषा के सौन्दर्य का वर्णन करने में मैं सभा का समय लेना नहीं चाहता हूं।

***माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्तः** हम संस्कृत के बारे में आपके विचार सुनना चाहते हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** जो कुछ मैं कहना चाहता था, उसका अनुमान कर लेने के लिये मैं माननीय सदस्य श्री गुप्ता का बड़ा कृतज्ञ हूं। यदि आपको कोई भाषा स्वीकार करनी है तो आप संसार की सर्वोत्तम कोटि की भाषा को क्यों न स्वीकार करें? यह बड़े खेद का विषय है कि आज हम यह भी नहीं जानते कि संसार के अन्य भागों में संस्कृत का कैसा और क्या सम्मान है। संस्कृत के बारे में यह सिद्ध करने के लिये मैं संक्षेप में उन कुछ बातों को उद्धृत करूंगा कि सभ्य संसार में इस भाषा का कितना सम्मान है। श्री डब्ल्यू.सी. टेलर कहते हैं "संस्कृत वह भाषा है, जो अतुलनीय सम्पन्नता तथा विशुद्धता से परिपूर्ण है।"

***अध्यक्षः** मैं यह सुझाव दूंगा कि आप इस विषय को रहने दें, क्योंकि जिन लोगों ने मूल रूप के संशोधनों की सूचना दी है, मैं उनके प्रतिनिधियों को बुलाना चाहता हूं और मैं एक उस सज्जन को भी आमंत्रित करूंगा, जिन्होंने संस्कृत के बारे में सूचना दी है कि वे उसके बारे में भाषण दें। माननीय सदस्य ने बंगला, अंग्रेजी और संस्कृत की सूचना दी थी। अतः मेरा विचार है कि इस विषय को वे यहीं छोड़ दें। मैं समझता हूं कि यह अच्छा होगा कि मैं उस सज्जन को, जिसने अन्य भाषाओं को न लेकर संस्कृत की सूचना दी है, उसे संस्कृत के बारे में बोलने दूं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** बहुत अच्छा, श्रीमान, मैं इसमें बाधा नहीं डालूंगा, मैं केवल कुछ उद्धरण दूंगा। प्रो. मेक्समूलर कहते हैं "संस्कृत संसार की सर्वोच्च कोटि की भाषा है, बड़ी ही आश्चर्यजनक तथा सर्वांगपूर्ण है।" सर विलियम जोन्स ने कहा है "संस्कृत की रूपरेखा अत्यन्त आश्चर्यजनक है, वह ग्रीक से अधिक पूर्ण है, लेटिन से अधिक प्रचुर है और दोनों से कहीं अधिक विशुद्ध है। जब हमारा ध्यान संस्कृत साहित्य की ओर जाता है, तो उसके अनन्त विशाल रूप का भाव स्वयं उत्पन्न हो जाता है। वास्तव में दीर्घातिदीर्घ जीवन उसकी रचनाओं को एक बार पढ़ने तक के लिये पर्याप्त नहीं हैं, जो इसके साहित्य में भरी पड़ी हैं और जो हिमालय के सदृश्य प्रकट रूप में हैं और जिसमें भारत ही नहीं, वरन् बाहर के किसी भी देश की बड़ी से बड़ी रचनाओं से बड़ी रचनायें हैं।" सर डब्ल्यू. हन्टर कहते हैं "संसार के व्याकरणों में पाणिनी का व्याकरण सर्वोच्च स्थान पर है। मानवी आविष्कार तथा उद्योग के एक बहुत ही शोभायमान कृत्य के रूप में वह स्थित है.....। हिन्दुओं ने अनुपम शोभायुक्त भाषा, साहित्य और धर्म का निर्माण किया है।" प्रो. बिटने कहते हैं "रचना में अनुपम प्रसाद गुण संस्कृत को भारत-यूरोप कुटुम्ब की भाषाओं में प्रथम स्थान प्रदान करता है।" प्रो. बोप कहते हैं "एक समय संसार की भाषा संस्कृत ही थी।" श्री दुबोस कहते है "यूरोप की

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

आधुनिक भाषाओं की जननी संस्कृत है।" प्रो. बेवर कहते हैं "पाणिनी के व्याकरण को संसार में सबसे अधिक संक्षिप्त तथा सबसे अधिक पूर्ण माना जाता है।" प्रो. विल्सन कहते हैं "हिन्दुओं के सिवाय अन्य कोई राष्ट्र अभी तक ऐसी उच्चारणानुकूल पूर्ण प्रणाली नहीं खोज पाया है।" प्रो. थोमसन कहते है "संस्कृत में व्यंजनों का प्रबन्ध क्रम मानव प्रतिभा का एक अनुपम उदाहरण है।" ढाका विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डॉ. शहीदुल्ला, जो समस्त संसार में संस्कृत के विद्धान के रूप में प्रसिद्ध हैं, कहते हैं "संस्कृत प्रत्येक व्यक्ति की भाषा है, चाहे वह किसी जाति का हो।"

***एक माननीय सदस्यः** आपका क्या विचार है?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** मेरा विचार यह है कि वह एक बहुत उच्च कोटि की भाषा है।

***एक माननीय सदस्यः** क्या इसे राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया जाये या नहीं? इस समय तो उसे कोई नहीं बोलता है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** जी हां, और इसका सरल सा कारण यह है कि वह सबके लिये निष्पक्ष रूप से कठिन है। हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों के लिये हिन्दी सरल है, पर अन्य क्षेत्रों के लिये वह कठिन है। मैं आपको एक ऐसी भाषा देता हूं, जो सबसे अधिक उन्नत तथा उच्च कोटि की है और वह निष्पक्ष रूप से कठिन है, उसका सीखना सबके लिये समान रूप से कठिन है। भाषा चुनने में कुछ निष्पक्षता होनी चाहिये। यदि हमें कोई भाषा स्वीकार करनी है तो वह भाषा उन्नत, उच्च कोटि की और सर्वोत्तम होनी चाहिये। तो फिर संस्कृत के दावे को हम क्यों अस्वीकार करें। मैं यह नहीं समझ पाता हूं। यदि अहिन्दी भाषा-भाषी लोगों को कोई भाषा सीखनी है, तो कदाचित वे किसी ऐसी भाषा को सीखने की अपेक्षा, जिसको संस्कृत से बहुत निम्न स्थान, गुण तथा पद प्राप्त है, संस्कृत को सीखना चाहेंगे। और फिर हिन्दी लिपि के विषय में मेरे पास बनारस विश्वविद्यालय के एक आचार्य श्री सी. नारायना मेनन का एक लेख है, जिन्होंने 'लिपि सुधार' नामक एक पुस्तिका लिखी है। उन्होंने, यह बतलाया है कि हिन्दी लिपि बहुत ही दोषपूर्ण है। उसके हाथ पैर सब दिशाओं में अग्रसर होते हैं। लिपि सुडौल तथा सुन्दर नहीं है और भाषा शीघ्र तथा सरलतापूर्वक नहीं लिखी जा सकती। श्रीमान, आधुनिक भाषा के लिये लिपि का विषय भी एक पहलू है, जिस पर विचार होना चाहिये।

श्रीमान, मैंने कुछ अधिक समय ले लिया है, पर मैं निवेदन करता हूं कि ये बातें बहुत गंभीर है और मैं यह निवेदन करता हूं कि जल्दी में हमें कोई

कदम नहीं उठाना चाहिये। हम सबको एक भाषा का विकास करना चाहिये और ग्रहण करने के पूर्व उसका परीक्षण करना चाहिये। मैं निवेदन करता हूं कि बंगाली, संस्कृत, अन्य भाषायें बहुत हैं और उन पर विचार करना चाहिये।

***श्री सारंगधर दास** (उड़ीसा राज्य): क्या मैं माननीय सदस्य से एक प्रश्न पूछ सकता हूं कि.....

***अध्यक्ष:** न कोई प्रश्न किया जाये और न कोई उत्तर दिया जाये।

***श्री सारंगधर दास:** मैं उन्हें स्पष्ट नहीं सुन पाया, मैं केवल यह जानना चाहता था कि क्या उन्होंने यह कहा था कि जापान की राजभाषा अंग्रेजी थी।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** जी हां।

***अध्यक्ष:** वक्ताओं को चुनने में जिस प्रक्रिया का मैं पालन कर रहा हूं, उसे मैं सदस्यों को समझा दूं। मैं उन संशोधनों को ले रहा हूं, जो मूल रूप के हैं और उन संशोधनों के प्रस्तावकों से भाषण देने के लिये कहूंगा, जिससे कि मूल रूप के सब विचार सर्वप्रथम सभी के सामने प्रस्तुत हो जायें।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): मैं आशा करता हूं कि संशोधनों का भेजना ही वक्ताओं को बुलाने का एक मात्र आधार नहीं है।

***अध्यक्ष:** जी नहीं, वास्तव में वह कोई आधार नहीं है। पर मैं उन वक्ताओं को चुन रहा हूं, जिन्होंने मूल रूप के संशोधनों की सूचना दी है, जिससे कि वे अपने संकल्पों पर बोल सकें। श्री कृष्णामूर्ति राव।

***श्री एस.वी. कृष्णामूर्ति राव:** श्रीमान, मैंने चार संशोधन भेजे हैं। संशोधन संख्या 69 में कहा गया है कि जैसी स्थिति है, वैसी ही रखी जाये और भाषा के विषय को भावी संसद के विनिश्चय पर छोड़ दिया जाये। यह सत्य है कि जब माननीय श्री गोपालस्वामी आयंगर का संशोधन हमें दिया जा रहा था, मैंने सोचा कि हमने झगड़े का अन्त कर दिया है और भाषा के विषय पर विनिश्चय कर लिया है। श्रीमान, वह संकल्प अत्यन्त कल्याणकारी है, जो एक ओर हिन्दी के समर्थकों को यह क्षेत्र प्रदान करता है कि वे अपनी भाषा को उन्नत बनायें और भारत की सार्वजनिक भाषा के रूप में उसका शनैः शनैः पुरःस्थापन करें। दूसरी ओर वह भारत के अन्य लोगों के भय का निराकरण करता है कि भाषा का आरोपण नहीं होगा और धीरे-धीरे अपने हिन्दी भाषा-भाषी मित्रों के समकक्ष होने और भारत की हिन्दी भाषा-भाषी जनसंख्या में अपना स्थान ग्रहण करने के लिये उन्हें समय दिया जायेगा। परन्तु दुर्भाग्यवश इस संकल्प पर इतने संशोधनों की सूचना दी गई है कि उनकी संख्या को देखकर मैं घबरा गया और मैं सोचता हूं कि यह अच्छा होगा कि इस प्रश्न को भावी संसद के विनिश्चय पर छोड़ दिया जाये। गत दो वर्ष

[श्री एस.वी. कृष्णामूर्त्ति राव]

से हम इस प्रश्न पर बक झक करते रहे हैं। यह दुर्भाग्यपूर्ण बात है कि यद्यपि हमने कई प्रश्नों पर परस्पर समझबूझ कर विनिश्चय किया है, पर इस मुख्य प्रश्न पर हम समझौता नहीं कर पाये हैं। अत: श्रीमान, मेरा निवेदन यह है कि जैसी स्थिति है, वैसी ही बनाये रखने के मेरे संशोधन को यह सभा स्वीकार करे।

मेरा दूसरा संशोधन उस खंड के बारे में है, जो राष्ट्रपति को भारत की सार्वजनिक भाषा में भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप के साथ-साथ अंकों के देवनागरी रूप को पुर:स्थापित करने की शक्ति देता है। मेरा निवेदन यह है कि इस प्रकार से नहीं होना चाहिये। वास्तव में जैसा कि माननीय श्री गोपाला स्वामी आयंगर कह चुके हैं और जैसा कि प्रत्येक व्यक्ति को विदित है, यह अन्तर्राष्ट्रीय अंक हमारे अंक हैं और केवल इस कारण कि वे भारत से बाहर चले गये और अन्य लोगों ने उनका विकास किया और उनको वर्तमान रूप दिया, इसलिये हम उन्हें किसी विदेशी वस्तु के रूप में देखें और उनका परित्याग करें, मेरे विचार से तो मूर्खता की पराकाष्ठा होगी। श्रीमान क्या हम पीछे हट रहे हैं या शेष संसार के साथ-साथ हम आगे बढ़ रहे हैं? यह एक महानतम देन है, जिसे भारत ने संसार की वैज्ञानिक विचारधारा को अर्पित किया है और उसमें क्रांति की है और अन्तर्राष्ट्रीय अंक, जिनका मूल रूप भारतीय है और जो हमारे ही अंक हैं, उनसे मुझे इतना प्रेम है कि मैं कुछ और नहीं मान सकूंगा। और अपने अंकों के रूप में हमें उनको फिर प्राप्त कर लेना चाहिये और संसार के समक्ष यह उद्घोषणा कर देनी चाहिये कि वे हमारे हैं और मेरे विचार से उन्हें विदेशी समझ कर उनका परित्याग करना समस्त देश के हित में नहीं है। अत: मेरा संशोधन यह है कि अनुच्छेद 301-क के खंड (2) के परन्तुक में–उसके पिछले भाग में राष्ट्रपति को जो शक्ति दी गई है, "परन्तु राष्ट्रपति उक्त कालावधि में आदेश द्वारा अंग्रेजी भाषा के साथ-साथ हिन्दी भाषा का तथा भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप के साथ-साथ देवनागरी रूप का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेगा", इस संबंध में मेरा आशय यह है कि "भारतीय अंकों के अंतर्राष्ट्रीय रूप के साथ-साथ देवनागरी रूप" शब्द निकाल दिये जायें और हम केवल अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप पर दृढ़ रहें, क्योंकि वह वास्तव में हमारा ही है।

इसके बाद मेरा अगला संशोधन संख्या 188 है और वह है, हिन्दी भाषा का विकास करने के लिये एक विद्वत्परिषद् स्थापन करने के बारे में, जिससे कि वह समस्त भारत को मान्य हो। मेरा सम्मानपूर्वक यह निवेदन है कि आज हिन्दी केवल एक प्रादेशिक भाषा तथा प्रान्तीय भाषा है, और केवल इसलिये कि 32 करोड़ लोगों में से लगभग दस करोड़ लोगों द्वारा वह बोली जाती है, हम उसे सार्वजनिक भाषा के स्तर पर ले जा रहे हैं। मैं भारत में बोली जाने वाली सब भाषाओं को–तामिल, तेलगु, कन्नड़, मलयालम, बंगला, गुजराती और अन्य सब भाषाओं को अपनी राष्ट्रभाषायें कहूंगा। परन्तु संघ के प्रयोजनों के लिये हम एक भाषा चाहते हैं और हिन्दी को वह भाषा मानने के लिये तैयार हैं। पर हिन्दी को अभी एक ऐसी भाषा

के रूप में बनना है कि उसका प्रभाव राष्ट्रीय जीवन के समस्त अंगों में प्रकट हो और इसके लिये उसे बहुत उन्नति करनी चाहिये। मेरा निवेदन यह है कि हिन्दी आज उस स्थिति तक उन्नत नहीं है। अपनी कुछ दक्षिण भारतीय भाषाओं से यह सिद्ध करने के लिये मैं उद्धरण दे सकता हूं कि आज हिन्दी जितनी उन्नत है, उससे वे कहीं अधिक उन्नत हैं। कुछ उदाहरण लीजिये। लाहौर में प्रकाशित महान हिन्दी-अंग्रेजी कोष (Great Indian English Dictionary) में कुछ वैज्ञानिक पदों के लिये ये शब्द हैं।

'हाइड्रोजन' के लिये प्रयुक्त शब्द	'उद्जन' है,
श्री बनर्जी द्वारा प्रयुक्त शब्द	'आइजन' है,
'ब्रोमीन' के लिये प्रयुक्त शब्द	'द्रुरोघ्री' है,
श्री बनर्जी द्वारा प्रयुक्त शब्द	'बरामीन' है,
'नाइट्रोजन के लिये प्रयुक्त शब्द	'भूपाथिड' है,
श्री बनर्जी द्वारा प्रयुक्त शब्द	'नेट्रोजन' है,
'आइडीन' के लिये प्रयुक्त शब्द	'जाने बुकी' है,
श्री बनर्जी द्वारा प्रयुक्त शब्द	'एथेन' है,
'आक्सीजन' के लिये प्रयुक्त शब्द	'जारक' है,
श्री बनर्जी द्वारा प्रयुक्त शब्द	'आक्षजन' है,
'कार्बन' के लिये प्रयुक्त शब्द	'प्रागार' है,
श्री बनर्जी द्वारा प्रयुक्त शब्द	'कराजन' है,

अब तक हाइड्रोजन, आक्सीजन और कार्बन के लिये कन्नड़ में हम 'जलजनक', 'सरजनक', 'आम्लजनक' और 'इंगला' प्रयोग में लाते हैं। अतः भिन्न-भिन्न वैज्ञानिक शब्दों के लिये भिन्न-भिन्न शब्दों का प्रयोग होता है। यदि यही दशा होगी, तो हमारे विद्यार्थी और वैज्ञानिक शेष संसार के साथ किस प्रकार निभा सकेंगे? मेरी यह धारणा है कि जहां तक वैज्ञानिक तथा प्रौद्योगिक शब्दों का सम्बन्ध है, हमें अतर्राष्ट्रीय शब्दों का प्रयोग करना चाहिये। संविधान की धारा 41 जैसे अनुच्छेद को लीजिये। उसमें कहा गया है कि भारत का एक राष्ट्रपति होगा। इसके हमारे पास यहां चार अनुवाद हैं और जिन शब्दों का प्रयोग किया गया है, वे बिल्कुल ही भिन्न हैं।

श्री सुन्दरलाल के अनुवाद में 'हिन्द का एक प्रेजीडेन्ट होगा' है, श्री राहुल सांकृत्यायन 'भारत का एक राष्ट्रपति होगा' कहते हैं, श्री गुप्ता कहते हैं 'भारत का एक प्रधान होगा' और काका कालेलकर 'प्रेजीडेन्ट' का अनुवाद 'परम पंच' करते हैं।

दक्षिण भारतीय भाषाओं में हम 'अध्यक्ष' शब्द का प्रयोग करते हैं, जो सरलता से समझ में आ जाता है। इस शब्द का प्रयोग क्यों नहीं करते।

[श्री एस.वी. कृष्णामूर्त्ति राव]

इन चार अनुवादों में से कुछ सांविधानिक शब्दों का मैं आपको उदाहरण दूंगा। कम्पेन्सेशन (compensation) : कन्नड़ में हम 'प्रिहार' शब्द का प्रयोग करते हैं। काका कालेलकर 'नुकसार भरी' शब्द का प्रयोग करते हैं, श्री राहुल सांकृत्यायण 'क्षतिपूर्ति' शब्द का प्रयोग करते हैं, गुप्ता जी 'मुआवजा' शब्द का प्रयोग करते हैं और श्री सुन्दरलाल 'यतजाना' कहते हैं। सिटिजन (citizen): हम पौर कहते हैं। काका कालेलकर 'नागर' कहते हैं, श्री राहुल सांकृत्यायन 'नागरिक' कहते हैं, गुप्ता जी, 'जान पद' कहते हैं और श्री सुन्दरलाल 'नागरा' कहते हैं।

रिपब्लिक (Republic): हम 'जनता राज्य' शब्दों का प्रयोग करते हैं। काका कालेलकर 'लोकराज' कहते हैं, श्री राहुल सांकृत्यायन 'गणराज्य' कहते हैं, गुप्ता जी 'गणराज्य' कहते हैं और श्री सुन्दरलाल 'लोक राज' कहते हैं।

ओथ (oath): हम 'प्रमाण' शब्द का प्रयोग करते हैं। काका कालेलकर 'सौगंध, शपथ, हलफ' कहते हैं, श्री राहुल सांकृत्यायन 'सम्मोदन, शपथ' कहते हैं, श्री गुप्ता जी 'निश्चयोक्ति, शपथ' कहते हैं, और श्री सुन्दरलाल 'वचन भरना, हलफ उठाना, कहते हैं। 'रेसिडयूरी पावर्स' '(Residuary powers) शब्द को लीजिये। हम 'शेषाधिकार' शब्द का प्रयोग करते हैं। काका कालेलकर 'बाकी बचे अधिकार' कहते हैं। श्री राहुल सांकृत्यायन 'शोषाधिकार' कहते हैं, गुप्ता ही 'अवशिष्ट विधान शक्ति' कहते हैं और श्री सुन्दरलाल 'रही सही शक्ति' कहते हैं।

लेजिस्लेशन (legislation) शब्दों को लीजिये: हम 'शासन कानून' शब्द का प्रयोग करते हैं। काका कालेलकर 'कानून' कहते हैं, श्री राहुल सांकृत्यायन 'व्यवस्था' कहते हैं, गुप्ता जी 'विधान' कहते हैं और श्री सुन्दरलाल 'कानून' कहते हैं।

ओथेंटिकेशन (authentication) शब्द को लीजिये: काका कालेलकर 'सचियाना, परमानन, सही करना' कहते हैं, श्री राहुल सांकृत्यायन 'प्रमाणित करना' कहते हैं, गुप्ता जी 'प्रमाणिकता' कहते हैं और श्री सुन्दरलाल 'सही करना' कहते हैं।

मैंने केवल पांच शब्द लिये हैं और इनके लिये प्रत्येक अनुवाद भिन्न-भिन्न शब्द रखता है। तो फिर इनमें से किस शब्द का हम संविधान में प्रयोग करें? मेरा निवेदन यह है कि सांविधानिक पदों का अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में निश्चित अर्थ होता है। उदाहरणार्थ, आप 'पार्लियामेंट' शब्द को लीजिये, संसार में आप कहीं भी चले जायें, उसका एक ही अर्थ है। उसके लिये हम किसी शब्द का प्रयोग करें? मैं निवेदन करता हूं कि इन शब्दों का विकास विशेषज्ञों की एक समिति को करना होगा और वह समिति केवल हिन्दी भाषा-भाषी लोगों की ही नहीं होगी, वरन् भारत

की समस्त महत्वपूर्ण भाषाओं के विशेषज्ञ उसमें होंगे। इसी कारण मैंने संशोधन संख्या 188 प्रस्तुत किया है, जो इस प्रकार है:

"कि उपरोक्त संशोधन संख्या 65 में प्रस्थापित अनुच्छेद 301-1 को उसी अनुच्छेद के खंड (1) के रूप में पुनरांकित किया जाये और इस खंड को खंड (2) के रूप में जोड़ दिया जाये:

'(2) The President shall appoint a permanent Commission consisting of experts in each of the languages mentioned in Schedule VII-A for the following purposes:—

(i) to watch and assist the development of Hindi as the common medium of expression for all in India,

(ii) to evolve common technical terms not only for Hindi but also for other languages mentioned in Schedule VII-A for use in science, politics, economics and other technical subjects,

(iii) to evolve a common vocabulary acceptable to all the component parts in India.' "

[(2) निम्न प्रयोजनों के लिये राष्ट्रपति अनुसूची 7क में उल्लिखित प्रत्येक भाषा के विशेषज्ञों का एक स्थायी आयोग नियुक्त करेगा।

(1) भारत में सबके लिये अभिव्यंजना के एक माध्यम के रूप में हिन्दी की उन्नति की देखभाल करना और उसमें सहायता देना,

(2) केवल हिन्दी के लिये ही नहीं, वरन् अनुसूची 7क में उल्लिखित अन्य भाषाओं के लिये भी विज्ञान, राजनीति, अर्थ शास्त्र और अन्य प्रौद्योगिक विषयों में प्रयुक्त करने के लिये एक समान प्रौद्योगिक पदों का विकास करना,

(3) भारत में के समस्त अंगभूत भागों के लिये एकमान्य शब्द संग्रह का निर्माण करना।]

मैं आशा करता हूं कि श्री गोपालस्वामी आयंगर इस संशोधन को स्वीकार करने की अपनी कोई युक्ति निकालेंगे। यथार्थत: मेरी कठिनाई यह है कि भारत की भिन्न-भिन्न भाषाओं में हम एक ही शब्द का प्रयोग भिन्न-भिन्न अर्थों में करते हैं। इसके मैं कुछ उदाहरण दूंगा।

'एअरक्रेफ्ट' (aircraft) शब्द के लिये काका कालेलकर की शब्दावली में 'हवागाड़ी' शब्द दिया हुआ है। 'विमान' शब्द का क्यों न प्रयोग हो? इसका

[श्री एस.वी. कृष्णामूर्त्ति राव]

अधिकतर प्रयोग होता आया है। 'बैंक (Bank) के लिये इसमें 'साहूकार, बंक' दिया गया है, जब कि संस्कृत में इसके लिये बड़ा ही सुन्दर शब्द 'धन कोठी' दिया हुआ है। दक्षिणी भारत में 'मिनिस्टर' के लिये हम 'मंत्री' शब्द का प्रयोग करते हैं और अपने हिन्दी के भाषा-भाषी मित्रों से जो निमंत्रण हमें मिलते हैं, उनमें मैं, देखता हूं, 'मंत्री' शब्द का प्रयोग 'सेक्रेटरी' के रूप में है।

'कौंसिल ऑफ स्टेट्स' (Council of States) के लिये 'रियासत सदन' अनुवाद रखा गया है। रियासतें अब नहीं रहीं। 582 रियासतों में से केवल दो या तीन रह गई हैं, परन्तु फिर भी 'स्टेट' का पुराना अर्थ चला आ रहा है और उसका अब भी प्रयोग होता है।

'कोर्ट' शब्द का अनुवाद 'कचहरी' किया गया है। हम लोग दक्षिण में 'कचहरी' शब्द का प्रयोग कार्यालय के लिये करते हैं।

ये वे शब्द हैं, जिनका भारत की सब भाषाओं में सामान्यतया प्रयोग होता है। मैंने देवनागरी अक्षरों का सीखना केवल उस समय आरम्भ किया, जब कि अपने जेल के जीवन में मैंने हिन्दी सीखी। बहुत काल तक दक्षिण में हिन्दी को मुसलमानी भाषा कहा जाता था। यह हिन्दी हिन्दुस्तानी का विवाद केवल उत्तर में है। परन्तु फिर भी हम हिन्दी को स्वीकार करने के लिये तैयार हैं। वह एक बहुत अच्छा संकेत था, जबकि मौलाना अबुल कलाम आजाद ने हमसे यह कहा था कि देवनागरी लिपि में हिन्दी भारत की सार्वजनिक भाषा होनी चाहिये। परन्तु उत्तर भारत के कुछ समाचारपत्रों में उन पर नियमित रूप से बौछार की जा रही हैं और उन पर यह दोषारोपण किया जा रहा है कि वे भारत के लोगों पर उर्दू आरोपित करने का प्रयत्न कर रहे हैं। इस समय इस विषय पर हम कोई सक्रिय विचार नहीं कर सकते हैं। देश के महानतर हित के लिये इस प्रश्न पर, एक शान्त वातावरण में जब कि भावावेश ठंडा हो जाये, विनिश्चय करना चाहिये। मेरे संशोधन का यह उद्देश्य है।

जहां तक कालावधि का संबंध है मेरा निवेदन यह है कि 15 वर्ष की कालावधि में कोई कमी नहीं होनी चाहिये। श्रीमान, मैंने हिन्दी सीखने का प्रयास किया है। मैंने हिन्दी की कुछ पुस्तकों का अपनी भाषा कन्नड़ में अनुवाद भी किया है। परन्तु इस सभा के समक्ष हिन्दी में भाषण देने का विचार मेरे लिये बड़ा कठिन है। इस भाषा की जटिलताओं को, हिन्दी भाषा-भाषी लोगों की मुहावरेदार भाषा को हम नहीं सीख सकते हैं। उसके सीखने में समय लगता है। मैं इस बात की चुनौती देता हूं। श्री गोविन्द दास, टंडन जी या गुप्ता जी इनमें से कोई तामील लोगों में जाकर रहे और तामील भाषा का बोलना सीखें, मैं यह कहूंगा कि इसमें जितनी समय लगे, वह हिन्दी भाषा का दक्षिण में पुर:स्थापन करने के लिये पर्याप्त है।

उनको 15 वर्ष ही नहीं, वरन् 20 या 25 वर्ष लगेंगे। यह समस्या वास्तव में कठिन है। आप केवल अपने ही दृष्टिकोण से इस पर विचार नहीं कर सकते हैं। इसी कारण मैं यह निवेदन करता हूं कि कालावधि आवश्यक है और पंद्रह वर्ष न्यूनतम अवधि है, जिसे हम स्वीकार कर सकते हैं।

संसार में कोई भाषा अपने आपको सबसे पृथक् नहीं रख सकती है। मैसूर संविधान-सभा द्वारा तैयार की गई पारिभाषिक शब्दों की एक शब्दावली मेरे पास है। मैंने इस पुस्तक को उठाया और यह जानने का प्रयास किया कि उसमें कितने उर्दू या हिन्दुस्तानी के शब्द हैं। उसमें हमने 67 शब्द ऐसे रखे हैं, जिनका मूल रूप उर्दू या हिन्दुस्तानी है। अपने विशुद्धवाद में क्या हम इन सब शब्दों को छोड़ दें? यदि आप अंग्रेजी को ही लें और उस भाषा के इतिहास तथा विकास को देखें, तो उसको अन्तर्राष्ट्रीय महत्व केवल इस कारण प्राप्त हुआ है कि उसने स्वतंत्रतापूर्वक अन्य भाषाओं से शब्द अपनाये हैं। यदि हिन्दी भारत की सामान्य भाषा होना चाहती है और उन्नतशील राष्ट्र की आवश्यकताओं को पूरा करना चाहती है, तो उसे अन्य सब भाषाओं से स्वतंत्रतापूर्वक शब्द ग्रहण कर अपना विकास करना चाहिये। जहां तक भाषा के विकास का सम्बन्ध है, हम किसी संकीर्ण दृष्टिकोण को नहीं अपना सकते हैं। बैंच, रेल, टेबुल इत्यादि शब्दों को लीजिये, इनमें से बहुत से शब्द प्रचलित हो गये हैं। हिंदी में हम बैंच शब्द के लिये क्या शब्द बना सकते हैं। क्या हम इन शब्दों में रद्दोबदल करेंगे? मैं समझता हूं कि यह बहुत ही घातक नीति होगी।

श्रीमान, इसके बाद मेरा संशोधन 'कन्नड़' शब्द के प्रति है। अनुसूची में इसका उल्लेख 'केनेरीज' के रूप में किया है। कन्नड़ का यह विकृत रूप है और इसका प्रयोग केवल मिशनरी लोगों द्वारा किया जाता था, जिन्होंने निस्सन्देह कन्नड़ भाषा की महान सेवा की। कन्नड़ वह शब्द है, जिसका प्रयोग हमारे एक कवि नृयुंपग में नवीं शताब्दी में किया था।

श्रीमान, इन शब्दों के सहित सभा की स्वीकृति के लिये मैं अपने संशोधन प्रस्तुत करता हूं।

मौलाना हिफजुर्रहमान (यू.पी. : मुस्लिम): जनाब वाला, मेरी तरमीम या संशोधन जवान के मामले में यह है कि हिन्दी की जगह हिन्दुस्तानी जबान या भाषा होनी चाहिए और स्क्रिप्ट, लिपि या रसमुलखत देवनागरी और उर्दू दोनों स्क्रिप्ट होने चाहिए और जिस-जिस जगह या आर्टिकिल में हमारे मुअज्जिज दोस्त गोपालस्वामी आयंगर ने हिन्दी का जिकर किया है, उस आर्टिकिल में हिन्दी की जगह हिन्दुस्तानी इस्तेमाल होना चाहिये और जिस जिस जगह उन्होंने हिन्दुस्तानी का जिक्र किया है, वहां पर हिन्दी और उर्दू होना चाहिए और इस हिन्दुस्तानी को इतना डेवलप किया जाये, ताकि उसमें उर्दू, हिन्दी, बंगाली और हिन्दुस्तान की तमाम जबानें समा सकें और पूरी तरह तरक्की दे सकें।

[मौलाना हिफजुर्रहमान]

ज़बान का मसला और भाषा का मसला इतना अहम है कि इस पर हमें ध्यान देना बहुत ही जरूरी है और जब हमें इस विधान परिषद् में आकर इस मामले पर गौर करने का मौका मिल रहा है, तो मैं इस हाउस के सामने अपने ख्यालात रखना जरूरी समझता हूं।

इस वक्त जबान का मसला हमारे मुल्क में बहुत ज़्यादा अहमियत अख्तियार कर गया है। इसलिये कि हम जब अपनी आजादी की जंग और लड़ाई को देखते हैं, तो तीस वर्ष की लड़ाई जो कि महात्मा गांधी के हाथों से लड़ी गई, उसमें जब जब भी हमारे सामने जबान का मसला आया है, तो वह बहुत ज्यादा अहमियत के साथ आया है इसलिये मैं आज इस बात से बहुत ज्यादा ताआज्जुब करता हूं और हैरान भी हूं कि जिस चीज से कल सारी कांग्रेस मुत्तफिक थी और जिस मसला (जबान) के मुताल्लिक कोई इख्तलाफ नहीं करता था और सभी यह कहते थे कि मुल्क की राष्ट्रीय भाषा हिन्दुस्तानी होनी चाहिए, जो हिन्दी और उर्दू लिपि में लिखी जाये। आज वही भाई इसको बदलना चाहते हैं।

महात्मा गांधी ने जिन बातों को बहुत ज्यादा अपनाया था और जो चन्द बातें उनके नजदीक बहुत ही अहम और जरूरी थीं, उनमें आजादी के साथ भाषा और जबान का मसला भी उनके सामने बहुत ही जरूरी और अहम रहा। और जब शुरू में हिन्दुस्तान में जबान का मसला आया, तो उनको हिन्दी के साहित्य सम्मेलन ने अपना मेम्बर बना लिया और उन्होंने हिन्दी को आगे बढ़ाने की कोशिश की। लेकिन जब उन्होंने यह सुना और आहिस्ता-आहिस्ता यह देखा कि हिन्दी से वह मुराद नहीं है, जो कि महात्मा गांधी चाहते थे, बल्कि उसको अलग जबान देखा, जो कि संस्कृताइजड है और उसको ज्यादा से ज्यादा संस्कृताइज़्ड करने की कोशिश की जाती है और उसी जबान को हिन्दी कहा जाता है, तो उन्होंने उसके साथ इख्तलाफ किया और उसके बाद उन्होंने इस बात का ऐलान भी किया और कहा कि मैं हिन्दी का मतलब हिन्दुस्तानी देखता हूं और इसीलिये उन्होंने हिन्दी अथवा हिन्दुस्तानी का प्रचार भी किया और जब कभी इस मामले पर उनके साथ बात हुई, तो उन्होंने कहा कि मैं हिन्दी का मतलब उस जबान से लेता हूं, जो कि उत्तरी हिन्दुस्तान में बोली जाती है और जिसको कि हिन्दू, मुसलमान, जो तमाम हिन्दुस्तान में बसने वाले हैं, बोलते और समझते हैं। इसी जबान को महात्माजी ने हिन्दुस्तानी या हिन्दी कहा, लेकिन जब उन्होंने यह देखा कि हिन्दी अथवा हिन्दुस्तानी कहने और समझाने से भी वह मतलब हासिल नहीं होता जो वह चाहते थे, तो आखिरकार उन्होंने एक तरफ साहित्य सम्मेलन से इस्तीफा दे दिया और दूसरी जानिब हिन्दुस्तानी भाषा को अपनाया और कहा कि मुल्क की राष्ट्रीय भाषा यही सादा जबान हो सकती है और यह भी कहा कि मैं राष्ट्रीय भाषा हिन्दी को नहीं चाहता हूं, बल्कि हिन्दुस्तानी जबान को चाहता हूं और उसी का प्रचार करूंगा। चुनाचे उसके प्रचार के सिलसिले में उनको बहुत कामयाबी हुई और उन्होंने हिन्दी साहित्य सम्मेलन को बतला दिया कि वह हिन्दुस्तानी जबान ही को मुल्क की आम और सादा जबान मानते हैं। चुनाचे उन्होंने उसी हिन्दुस्तानी के मुताल्लिक कोशिश की।

मुझे याद है और भूला नहीं हूं कि जब 30 जनवरी को वह अजीम और सबसे बड़ा हादसा पेश आया और जब किसी जालिम ने महात्मा गांधी को हम से छीन लिया, उस हादसे से तीन राज पहले जो बातें मेरी महात्मा गांधी से बिरला हाउस में हुईं, उस वक्त दस या ग्यारह बजे थे, उन्होंने मुझे कहा कि अब मुल्क में अमन हो गया है और मुझे बहुत खुशी हुई है। जिस तरह से देहली में अमन कायम करने के लिये आपने मेरा साथ दिया है, उसी तरह हिन्दुस्तानी जबान के प्रचार के लिये हिन्दुस्तान में कोशिश करनी है और आप लोगों को मेरा इसमें साथ देना होगा। हमने उस वक्त उनसे कह दिया कि हम आपके साथ हैं।

गांधी जी का ख्याल था कि हिन्दुस्तान का नाम बहुत ऊंचा और बुलंद हो और इसके लिये उन्होंने अपने जीवन भर कोशिश की और इसी के लिये जान दी और कामयाब हुए। तो अब मैं हैरान हूं कि हिन्दुस्तान का हर एक आदमी आला और अदना, जो यह चाहता है कि हिन्दुस्तान का नाम ऊंचा और बुलंद हो, वह कैसे गांधी जी के एक बड़े नियम और उसूल को भूल गये हैं और जिस हिन्दुस्तानी जबान का गांधी जी प्रचार करते थे और उसको यूनियन की राष्ट्रभाषा बनाना चाहते थे, उसको बिल्कुल खत्म करना चाहते हैं और उसकी जगह हिन्दी जबान को दे रहे हैं। मैं हैरान हूं कि कांग्रेसमैन महात्मा गांधी के उन उसूलों को आज कैसे भूल गये हैं, जबकि उनका नाम हर एक बात के साथ लेते हैं। मैं हैरान हूं कि उनके आदर्शों को कैसे भुला दिया गया है।

शायद अब यह कहा जाये कि इस मामले में गांधी का नाम क्यों लाया जाता है, तो मेरा जवाब यह होगा कि मैंने उनका नाम इस वास्ते लिया कि यह मामला खुद गांधी जी के वास्ते एक अहम और जरूरी मामला था और कांग्रेस ने भी हिन्दुस्तानी ही को मुल्क की जबान तस्लीम किया था। इसलिये जो कुछ महात्मा गांधी ने कहा है और जो उनके उसूल थे, उन पर चलना चाहिये और जो कुछ उन्होंने कहा है, उसके साथ किसी को इख्तीलाफ नहीं होना चाहिये। महात्मा गांधी ने जिन बातों पर जोर दिया था, उनमें जबान का मसला भी एक था।

एक दफा जब उनको अपना अखबार बन्द करने की जरूरत महसूस हुई, वह उस वक्त हुई कि जब वह हिन्दुस्तानी में भी अखबार निकालते थे। उस वक्त उन्होंने कहा कि जो आर्टिकिल या अखबार मैं हिन्दुस्तानी में निकालता हूं, अगर उस पर लोग नाराज हैं, तो मैं ऐसा क्यों करता हूं और वह मेरे अखबार को नहीं पढ़ेंगे। उनका यह ख्याल है कि ऐसा करने से सिर्फ मैं हिन्दुस्तानी अखबार को ही बन्द कर दूंगा। लेकिन मैं हिन्दुस्तानी अखबार के साथ-साथ हिन्दी अखबार को भी बन्द कर दूंगा। उस वक्त हमने उनसे कहा था, कि आप दोनों में से एक को भी बन्द न करें। जितनी भी कमी आपको इसमें होगी वह सब हम सारे हिन्दुस्तान में घूम कर पूरी कर देंगे और आपको खरीददार मुहैया करेंगे। चुनाचः सिर्फ देहली में हमने एक दिन में उनको एक सौ खरीददार दिये थे। तो मेरे कहने का मतलब यह है कि महात्मा गांधी हिन्दुस्तान के लिये हिन्दुस्तानी जबान को ही

[मौलाना हिफजुर्रहमान]

निहायत जरूरी ख्याल करते थे। वह इसको हिन्दुस्तानी कह कर ही मानते थे, हिन्दी कर कह नहीं मानते और अगर कभी हिन्दी कहा भी, तो बाद में अपनी राय बदल ली। चुनाचः उससे मालूम होता है कि उन्होंने काफी विचार के बाद और बहुत जुस्तजू करने के बाद यह सोचा कि हमारे मुल्क हिन्दुस्तान की जबान हिन्दुस्तानी होनी चाहिये। लेकिन आज यहां पर हिन्दी को उसी हिन्दुस्तानी की जगह रखा जा रहा है और गांधी जी के और कांग्रेस की तीस साला तारीख के खिलाफ गलत कदम उठाया जा रहा है। पहले पहल में हिन्दी को हिन्दुस्तानी से बहुत ज्यादा बाहर नहीं समझता था, लेकिन जब हिन्दी हिन्दुस्तान की यूनियन की जबान बनाने के लिये मुल्क में चर्चा शुरू हुई, तो मुझे अन्दाजा हुआ कि हिन्दी और हिन्दुस्तानी में क्या फर्क है और यह मालूम हुआ कि हिन्दी का मतलब उस जबान से है, जो कि संस्कृताइज्ड हो और जिसमें फारसी, अरबी और उर्दू के अल्फ़ाज़ न हों और अगर हों भी, तो उनको दर किया जाये और उनकी जगह नये अल्फाज ले लिये जायें। हमें बार-बार इसकी तरफ तवज्जह दिलायी जाती है और इतमीनान दिलाये जाते हैं और कहा जाता है कि ऐसा नहीं है। और हिन्दी से मुराद यह नहीं है कि उसके वह शब्द या अल्फ़ाज़ जो कि बराबर बोले जाते हैं और जो अरबी, फारसी या उर्दू के अल्फाज़ इसमें हैं, वह निकाल दिये जायें। कहा जाता है, वह निकाले नहीं जायेंगे, बल्कि उसमें रखे गये हैं और रहेंगे। और तसल्ली दी जाती है कि यह सब अल्फाज़ इसमें मौजूद होंगे। लेकिन आप यू.पी. को लीजिये। जैसाकि मैंने पार्टी मीटिंग में भी कहा था, वहां पर उन्होंने हिन्दी जबान को सूबे की जबान और इलाका की जबान करार दिया है और सरकारी जबान भी बना दिया है। चुनाचः उसमें नये-नये अल्फ़ाज़ सामने आ रहे हैं और वहां पर अब नये-नये तरीके बनाये गये हैं और जहां-जहां भी उर्दू अल्फ़ाज़ थे, उनको हटा दिया गया है और उन सबकी जगह पर नये-नये शब्द और अल्फ़ाज़ मुकर्रर किये गये हैं और जो अल्फ़ाज़ अवाम बोलते थे, उनको निकाल दिया गया है। आज विचार करें, तो मैं कहता हूं कि वजीर और नायब वजीर शब्दों को सब जानते हैं। कौन नहीं जानता कि वजीर किये कहते हैं, लेकिन वजीर और नायब वजीर कहना जुल्म हो गया है। उसके बजाय "सचिव" और "उपसचिव" का लफ्ज अख्तियार किया गया है। इसी तरह यही नहीं, बल्कि आम बोलचाल जो सुबह से शाम तक गांव वाले भी बोलते और समझते हैं, जैसे मुकद्दमा, मिस्ल मुद्दई-मुद्दालय आज उनको हटा कर मुकद्दमा के मुतल्लिक ऐसी भाषा और ऐसी जबान लाई जाई जा रही है, जो आम तरीके से सारे देश में हिन्दू भी पूरे तरीके से नहीं समझते हैं और न बोलते हैं। इससे यह बात मालूम होगी कि हिन्दी कहने का मतलब यह है कि यह संस्कृताइज्ड हिन्दी होगी, जिसमें से हजारों उर्दू के शब्द निकाल कर उनकी जगह दूसरे लफ्ज लाये जायें और साथ ही यह भी कहते रहेंगे कि उर्दू अल्फाज़ नहीं निकाले जायेंगे, मगर प्रेक्टिस और अमल में उसके बरअक्स कोशिश की जा रही है कि किस तरीके से हिन्दुस्तानी और उर्दू के अल्फाज़ रखे जायें। मेरे भाई सेठ गोविन्द दास ने अभी-अभी कहा है कि हमें उर्दू से प्रेम है, मगर उर्दू मुसलमानों की जबान है।

***सेठ गोविन्द दासः** श्रीमान, व्याख्या के रूप में एक बात है, मैंने यह कभी नहीं कहा कि उर्दू मुसलमानों की भाषा है।

***मौलाना हिफज़ुर्रहमानः** जो कुछ आपने फरमाया है, वह अब फरमा दीजिये। उर्दू यहां के एक खास फिरके की जबान मान कर ही तो आपने यह ऐतराज किया कि उर्दू जबान के मुतल्लिक मैं यह कहे बगैर नहीं रह सकता कि इसमें बाहर की चीज़ें भी मिलती हैं। मैं गुजारिश करूंगा कि उर्दू को मुसलमान ईरान से लेकर आये थे, न स्पेन से और न अरब से, बल्कि उर्दू जबान यहां के प्रेम और हिन्दू-मुसलमान की बोलचाल और बाजारों, मकानों और गलियों, कूचों में रहन-सहन से वजूद में आई और हिन्दू-मुस्लिम मुहब्बत और प्रेम का संगम बन कर पैदा हुई। मगर आज वही उर्दू जबान, जिसको हम सब कल तक सीने से लगाते थे, आज नफरत से देखते हैं कि चूंकि यह बाहर की चीजें रखती है, इसलिये यूनियन की जबान नहीं हो सकती।

मगर मैं दावे से कहता हूं कि यह गलत है, बल्कि इसके खिलाफ उर्दू में हिन्दुस्तान और भारत के ख्यालात और यहां की संस्कृति के विचार भरे पड़े हैं। आप उर्दू शायरी और शायरों के कलाम को पढ़ें, तो आपको अपनी गलती खुद मालूम हो जायेगी। क्या आप नहीं जानते कि हाल ही के मजहबी शायर मुहसिल काकोरी ने पैगम्बर इस्लाम (सलेअला अलह वसलम) की तारीफ की है, उसमें कहते हैं:

सिम्त काशी से चला जानिबे मथुरा बादल,
बरक के कांधे पे लाई है सवा गंगा जल,
खबर उड़ती हुई आई है जहां में यह अभी,
कि चले आते हैं तीर्थ को हवा पर बादल, (वगैरह वगैरह)।

इस तरीके की शायरी में भी गंगा और मथुरा का जिक्र आया है और शायर ने मक्का, मदीना और ज़मज़म को काशी, मथुरा और गंगाजल के रंग में दिखाया है। ऐसी सूरत में यह कहना कि उर्दू बाहर की जबान है, का ख्याल पेश करती है, मैं किस तरीके से कहूं कि इससे ज्यादा गलत बात दूसरी नहीं है, आज हमारे दिमाग में यह चीज़ आ गई है कि जिसकी वजह से हम महात्मा जी के बने बनाये उसूल को अपने हाथ से मिटाने की कोशिश कर रहे हैं।

मोहसिम की तरह नजीर अकबराबादी की सारी शायरी इसी ढंग पर है, जिसमें हिन्दुस्तान ही के इस्तेआराम, तशबीहात और विचार मौजूद हैं। वह मौत का नक्शा खींचते हुए कहते हैं:

जब चलते-चलते रस्ते में यह गौन मेरी ढल जायेगी,
एक बधिया तेरी मिट्टी पर फिर घास न चरने पायेगी,
यह खेप जो तूने लादी है सब हिस्सों में बंट जायेगी,
वही पूत जनवाई बेटा क्या बन्जारन पास न आयेगी,
सब ठाठ पड़ा रह जायेगा जब लाद चलेगा बन्जारा।

[मौलाना हिफजुर्रहमान]

बंजारा जब अपना सामान लाद कर चलता है और ठाठ छोड़ जाता है, यानी जब आदमी मरेगा, तो अपना सब सामान यहीं छोड़ जायेगा। उसमें ठाठ, बधिया, वही पूत, जनवाई, बंजारा इसी मुल्क और मुल्क की भाषा के विचार हैं, अरबी और फारसी के नहीं हैं। इसके अलावा अमीर खुशरू, हाल के शायर डॉक्टर इकबाल, अकबर इलाहबादी के कलाम में बहुत कुछ इस मुल्क का है। अगर आप इसे हिन्दुस्तान की जबान कहें, तो मैं मानता हूं। लेकिन इस बात को साफ अल्फाज़ में मानना पड़ेगा, जो मौजूदा संस्कृताइज्ड और अरबी जबान जिसको सारे मुल्क की जबान कहा जा रहा है, वह कभी सारे मुल्क की जबान नहीं बन सकती। इसी तरह उर्दू से हमारी इस्तेला में वह उर्दू हो गई है, जिसमें अरबी फारसी के अल्फाज़ का ज्यादा से ज्यादा इस्तेमाल है। मगर वह उर्दू हमारे रहन सहन और हमारी बाजारी कारोबार की उर्दू नहीं बन सकती। इसी लिये महात्मा जी ने ठीक फरमाया था कि अगर यूनियन की कोई आम जबान बन सकती है, जो तमाम मुल्क में बोली और समझी जा सके, तो वह हिन्दुस्तानी है। जिसमें उर्दू और हिन्दी दोनों जबानें समाई हुई हैं और उसमें बंगाली के अल्फाज की भी समाई है और देश की दूसरी जबानों के अल्फ़ाज़ भी आ जाते हैं। इसलिये जो हजरात हिन्दी को मुल्क की जबान, सरकारी जबान बनाना चाहते हैं, वह दूसरे शब्दों में यह कहना चाहते हैं कि सरकारी जबान वह होनी चाहिये, जो संस्कृत ही के जरिये तरक्की पाती रही है। उर्दू के हजारों अल्फ़ाज़ जो उर्दू, फारसी, अरबी के बोले और समझे जा रहे हैं और मुल्क की बोली में दाखिल हैं, उनको निकाल कर संस्कृताइज़्ड अल्फाज बनाये जायें और इस तरह लिट्रेरी हिन्दी मुल्क की जबान हो, इसी तरह उर्दू को मुल्क की जबान बनाने का आजकल यह मतलब लिया जाता है कि वह जबान, जो अरबी, फारसी ही के जरिये तरक्की कर रही है और उसमें संस्कृत के नये अल्फाज की गुन्जायश नहीं है और पुराने अल्फ़ाज़ भी मतरूक हों, यह दोनों बातें और दोनों ख्याल गलत हैं उनके बजाय देश की सरकारी भाषा वह होनी चाहिये, जो उत्तरी हिन्दुस्तान में सादा और सिम्पल रंग में बोली जाती है और जिसमें पूरे देश के अन्दर फैलने और आसानी के साथ फलने और फूलने की गुंजाइश है और वह बनावटी रंग में किसी की बनाई हुई जबान नहीं है। एक बात यह भी काबिल तवज्जह है कि कुछ भाइयों ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन का जिक्र करते हुए कहा कि महात्मा जी ने कहा था कि हिन्दुस्तान की जबान हिन्दी है, तो मैं आपसे कहूंगा कि उस ख्याल को बदल दिया गया था, चुनाचे आखिरदम तक महात्मा जी ने हिन्दुस्तानी प्रचार सभा के जरिये इसी का प्रचार किया है कि सारे मुल्क की राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी ही है। इसके अलावा तीस वर्ष से इण्डियन नेशनल कांग्रेस के प्लेटफार्म से पूरे इत्तेफ़ाक के साथ इस बात का ऐलान होता रहा है कि हिन्दुस्तान

की सरकारी जबान हिन्दुस्तानी ही होगी और उसकी जब भी तारीफ की गई, तो यह कि हिन्दुतानी जबान वह है, जो बिहार से लेकर फ्रान्टियर तक बोली जाती है। अगर वह हिस्सा, जो फ्रान्टियर तक निकल गया है, उसको छोड़ दिया जाये, तब भी यह जबान बिहार से लेकर मशरकी पंजाब तक बोली और समझी जाती है और यही नहीं, बल्कि सारे देश में हिन्दू और मुसलमानों में इसके बोलने और समझने वाले मौजूद हैं। आप महात्मा जी के उसूल को भुलाकर और तीस साला इंडियन नेशनल कांग्रेस के इतिहास और तारीख को भुलाकर हमको उस चीज के कबूल करने पर मजबूर करते हैं, जो जबान की तारीख और कांग्रेस की तारीख दोनों के खिलाफ है। और उसको हम पर इम्पोज करना चाहते हैं और तिवर बदल कर यह कहते हैं कि मुल्क की वही भाषा हो सकती है और होगी, जिसको हम यूनियन की भाषा करार दे दें। मैंने पार्टी मीटिंग में भी चैलेंज किया था और आज भी दरयाफ्त कर रहा हूं कि बतलाया जाये कि आज किसलिये महात्मा जी के उसूल और कांग्रेस के तीस साला फैसले के खिलाफ यह बेदलील बात कही जा रही है; मगर अफसोस कि मुझको न वहां जवाब मिला और न इस वक्त। आखिर बतलाइये तो कि महात्मा जी के उसूलों में तबदीली क्यों हुई और कांग्रेस के फैसले को क्यों बदला गया। मैं तो यह साफ कहूंगा कि बदकिस्मती और बदनसीबी से जब पार्टीशन हुआ, तो उस पार्टीशन की वजह से दिमागों पर जो बुरा असर पड़ा, उसके नतीजे में हम इतने बड़े उसूल को भूले जा रहे हैं और यह पार्टीशन के असरात का ही रिएक्शन है और इसी को सामने रखकर हम यह सोच रहे हैं और उस गम और गुस्से में जो कि खुद अपने हाथों पेश आया और जिसके लिये सभी मुजरिम हैं हिन्द यूनियन के एक फिरके के खिलाफ तंगनज़री और तंग दिली का सबूत पेश कर रहे हैं और जबान के मसले को पोलीटिकली तंग ख्याली से तय करना चाहते हैं और जबान को मुल्क की जबान की हैसियत से फैसला करना नहीं चाहते हैं; मगर यह खतरनाक तर्ज अमल है। मगर हैरान हूं कि बार-बार तकरीरों में इन्हीं जजबात का मज़ाहिरा किया जा रहा है और बाहमी प्रेम और शान्ति से मसला को हल करने की जगह मरऊब करने वाले मुस्से से काम लिया जा रहा है। मगर मेरे ख्याल में, बल्कि हर अकलमन्द की निगाह में, यह तरीका किसी तरह भी मुल्क की तरक्की और जबान की तरक्की दोनों के लिये मुफीद नहीं। गर्ज कोई जबान भी मुल्क की कौमी या सरकारी जबान बनाई जाये, वह ऐसी होनी चाहिये, जो सारे देश के बसने वालों के लिये आसान हो और जिसको वह खुश दिली के साथ कबूल करें और अक्सीरियत के बलबोते पर जबर्दस्ती ठोंसी हुई न हो, वरना तो वह कभी आम कबूलियत हासिल नहीं कर सकती। इसी लिये महात्मा जी ने हिन्दुस्तानी को यूनियन की सरकारी जबान बतलाया था, या बनाने की कोशिश की थी। और इसी को कांग्रेस अपने सीने से लगाकर तीस साल तक दुनियां के सामने इसका प्रचार करती रही है। लिहाजा अगर हम इसके खिलाफ हो कर तंग दायरा में ही रहना चाहते हैं, जैसा कि आज कल

[मौलाना हिफजुर्रहमान]

हो रहा है, तो यह न होना चाहिये कि दुनिया में जबानें सिमटने से कभी तरक्की नहीं करती, बल्कि फैलने और हर जबान से फायदा उठाकर आम मकबूल जबान बनने से तरक्की पाती है। वह लोगों के दिमागों पर इम्पोज नहीं की जाये, बल्कि अपनी हमागीरी और फैलाव से आम मकबूलियत हासिल करती हैं। चुनाचे तारीख बतलाती है कि दुनिया की जबानों ने तरक्की की है, फैसले से, दूसरी जबानों के लफ्ज ले लेने से उनको अपने रंग में ढाल देने से, अपने सांचे में ढाल देने और अगर आप रेडियो लाउडस्पीकर के लिये नये-नये अल्फ़ाज़ बनाकर लिखें और पेश करेंगे तो एक तमाशा-सा हो जायेगा, जिस तरह का तमाशा मुझ को यू.पी. असेम्बली में नज़र आता है। एक मेम्बर होने की हैसियत से मैंने देखा कि वजीर लोग खड़े होते हैं और वह ऐसे अल्फ़ाज़ पढ़ते हैं, जिनका समझना खुद उनको मुश्किल हो जाता है। इसके बाद दस या तीस मिनट बाद जब वह बोलने को खड़े होते हैं, तो फिर उसी जबान पर आ जाते हैं, जिसको महात्मा गांधी ने हिन्दुस्तानी जबान कहा है और जिसको इण्डियन नेशनल कांग्रेस ने हिन्दुस्तानी जबान कहा है। इसलिये अगर आप हिन्दुस्तानी जबान को नहीं मानते और हिन्दी भाषा को लाते हैं, तो आप एक सही तरीका इख्तयार नहीं करते हैं। मैं समझता हूं कि चाहे हम मामले में फिरकावाराना तरीके से सोचने का इरादा न किया गया हो, बल्कि यह चीज खुदबखुद हमारे अन्दर आ गई हो, मगर है यही बात। क्योंकि बाज हालात ऐसे होते हैं कि आदमी के दिल में एक चीज आ जाती है और पता भी नहीं चलता कि किस रास्ते से वह आ गई। इसलिये हिन्दुस्तानी की बजाय हिन्दी को लाना हो सकता है कि इस रास्ते से हुआ हो। पार्टीशन हुआ और उसने एक जहर पैदा किया, यह आज उसका ही रिएक्शन हो रहा है। आज यह ख्याल किया जा रहा है कि एक तबके को मरऊब करने के लिये एक ऐसी चीज को सामने लाया जाये कि जिससे यह साबित किया जा सके कि यह जबान का मसला जबान के तरीके से नहीं, बल्कि इस तरीके से हल किया जाये। यह कहा गया है कि हम सिर्फ एक हिन्दी जबान इसलिये चाहते हैं कि हम संस्कृति (तहजीब और कल्चर) एक चाहते हैं। दो नहीं चाहते हैं। मैं नहीं समझता कि इससे आप की क्या मुराद है। हिन्दुस्तान में कुछ लोग पंजाबी जबान बोलते हैं, कुछ बंगाली बोलते हैं और दूसरे दूसरी जुबानें बोलते हैं; अगर यही बात है कि उसका असर संस्कृति और तहजीब और तमद्दुन पर पड़ता है, तो हिन्दुस्तान की सारी रियासतों और इलाकों की जबानों को मटियामेंट कर देना चाहिये। क्योंकि संस्कृति तभी महफूज रह सकती है कि जब कि सारे मुल्क की एक जबान हो। मैं तो समझता हूं कि मुख्तलिफ जबानें बोलने से तहजीब पर कोई खास असर नहीं पड़ता है। स्वीट्जरलैन्ड एक छोटा-सा मुल्क है, जहां चार जबानें बोली जाती हैं और चारों जबानों में वहां काम होता है; उन सबको रियासत और स्टेट ही जबान समझा जाता है, लेकिन उससे वहां की तहजीब पर कोई असर नहीं पड़ता। वहां चार

जबानें यानी इटालियन, फ्रैंच, जर्मन और वहां की जबान बोली जाती है, पर उससे वहां की तहजीब पर कोई असर नहीं पड़ा। और अगर असर पड़ता है, तो फिर ऐसी जबान को राष्ट्रीय भाषा बनाना चाहिये, तो किसी तन्हा एक फिरके की तरजीही जबान न हो। बल्कि एक नई जबान हो। या ऐसी जबान हो, जो सब फिरकों के लिये आसान हो और मुल्क के तमाम बसने वाले खुशी से उसको कबूलकर लें। वरना दूसरों पर अपनी संस्कृति को ठूंसना इन्साफ और ईमानदारी के खिलाफ है। कुछ लोग फरमाते हैं कि रूस में लोगों के नाम एक हैं और लोगों का रहन-सहन एक है। माफ कीजिये, इन चीजों की यहां बहस नहीं थी, लेकिन इनको यहां छेड़ा गया। आपको मालूम होना चाहिये कि रूस में कई सौ मुख्तलिफ जबानें बोली जाती हैं और उन सबको स्टेट की जबानें तस्लीम कर लिया गया है। रूस में अब भी धर्म की वजह से अब्दुल रहमान वगैरह लोगों के नाम हैं, तो किसी का नाम अब्दुल रहमान होने से या किसी का शान्ति प्रसाद होने से किसी मुल्क की तहजीब में कोई फर्क नहीं पड़ता। अगर किसी धर्म की वजह से किसी का नाम खुदा के नाम पर या ईश्वर के नाम पर पड़ता है, तो उससे कोई फर्क नहीं पड़ता और अगर कोई संस्कृति ऐसी है कि जिसमें हर एक शख्स एक ही रंग में ढला नजर आता हो, तो इस मुल्क में मुझे तो वह संस्कृति नज़र नहीं आती। यहां जो साहबान बैठे हैं, उनके मुख्तलिफ लिबास हैं, वह मुख्तलिफ बोलियां बोलते हैं और भांति-भांति के उनके नाम हैं; उससे क्या उनके कल्चर पर असर पड़ता है। नहीं, बल्कि पार्टीशन के असर से आप उन चीज़ों को एक सीधे रास्ते से नहीं, टेड़े रास्ते से लाकर एक कम्यूनिटी को यह बताना चाहते हैं, उसको आयन्दा उस रंग में रंगना है। यह तरीका जबान के मसलों को हल करने का नहीं होता। जबान को जबानों के तरीके पर हल कीजिये। दलायल से हल कीजिये, तब हम समझें कि यह बात है। जो दलायल दिये जा रहे हैं, यह महात्मा गान्धी का उसूल नहीं है और कांग्रेस का उसूल नहीं है। अगर आप जबान को जबान के एतबार से देखें, तो न तो साहित्य हिन्दी इस मुल्क की जबान हो सकती है और न अरबी उर्दू इस मुल्क की जबान हो सकती है, बल्कि जबान तो सहल और सीधी हिन्दुस्तानी बन सकती है। इसलिये इसी भाषा को हम लें और वह भी मुल्क की जबान बन सकती है।

इसके साथ ही साथ जहां तक स्क्रिप्ट का ताल्लुक है, उसमें मैं यह गुजारिश करूंगा कि जबान के मसले में और इसमें कुछ फर्क है। हम देखते हैं कि बाज रसमुलखत ऐसे हैं, बाज लिपि ऐसी है, जिनमें बाज अल्फाज ठीक तरह अदा नहीं हो सकते। ऐसी सूरज में कि आज जिस जबान में हम बोलते हैं, कल आप हिन्दी को मुल्क की राष्ट्रीय भाषा कह कर क्या आप यह नहीं कहेंगे कि तुम को शक्ति कहना चाहिये, ताकत नहीं कहना चाहिये, क्योंकि हिन्दी वाले कहते हैं कि ताकत न बोलो, पर शक्ति बोलो।

[मौलाना हिफजुर्रहमान]

वह कहते हैं कि हृदय बोलो, कल्ब या दिल न बोलो। समाज कहो, मजलिस न कहो। एवान न कहा जाये, भवन कहा जा सकता है। हम यह कहते हैं कि हिन्दी कहती है कि भवन कहिये और उर्दू कहती है कि एवान कहिये, तब हिन्दुस्तानी सामने आकर दोनों का मिलाप कराती है और दोनों का संगम बन कर प्रेम से कहती है कि समाज भी कहिये और मजलिस भी कहिये। इसी लिये मैं कहता हूं कि ऐसी जबान होनी चाहिये कि जिसमें आम तौर पर बोले जाने वाले सब अल्फ़ाज़ हों। जिसमें ताकत भी हो और शक्ति भी, हृदय भी और कल्ब भी। और समाज, मजलिस और सोसायटी सभी बोलने की गुन्जायश हो और वह ऐसी जबान हो, जिसमें हम आजादी से बोल सकें। रसमुलखत अगर आप देवनागरी को रखना चाहते हैं, तो मैं इसके खिलाफ नहीं हूं। लेकिन अगर आप अव्वल पोजीशन में देवनागरी को रखते हैं, तो एडिशिनल पोजीशन में उर्दू लिपि को भी रखें। सरकारी इख्तलात वगैरह दूसरी इन्फर्मेशन और अदालत के कामों में बराबर उर्दू रस्मुलखत की भी इजाजत होनी चाहिये।

श्री महावीर त्यागी: आप हिन्द से कैसे मंजूर कहेंगे?

मौलाना हिफजुर्रहमान: मैं समझता हूं कि अगर आप इस तरीके से जबान के मसले को हल करें, तो यकीनन मुल्क की जबान ऐसी जबान होगी, जिससे सबको पूरे तौर पर इतमीनान होगा, जिसको लोग अपने मुल्क में खुशी के साथ बोल और समझ सकेंगे और उसके जरिये मुल्क के मामलात में दिलचस्पी ले सकेंगे।

इसके साथ हिन्दसों का भी ताल्लुक है, जैसा कि अभी मेरे भाई त्यागी जी ने कहा, तो जहां, तक पन्द्रह साल तक अंग्रेजी को रखने का सवाल है, मुझे इससे कोई खास बहस नहीं है। इस बारे में मैं एक और मौके पर अर्ज कर चुका हूं। मैं तो कहता हूं कि आप इस मुल्क में यहां की जबान को, इसे चाहे आप हिन्दी कहें या हिन्दुस्तानी कहें, जितनी जल्द ही लाना चाहें, लायें। मुझे इससे इन्कार नहीं है। लेकिन जो दलाइल अंग्रेजी को पन्द्रह साल तक कायम रखने के सिलसिले में और जो अंग्रेजी न्यूमर्ल्स को रखने के बारे में दिये गये हैं, उनसे मैं सहमत हूं। अगर हम पन्द्रह साल अंग्रेजी जबान को तसलीम करते हैं, तो अंग्रेजी हिन्द से खुद-बखुद शामिल हो जाते हैं।

श्री महावीर त्यागी: अगर आप उर्दू लिखेंगे, तो सात सौ छयासी तो अंग्रेजी में ही लिखा जायेगा।

मौलाना हिफजुर्रहमान: अगर आप अंग्रेजी को तसलीम करते हैं, तो उर्दू या अंग्रेजी में सात सौ छयासी लिखने में हमारे नज़दीक कोई खास दिक्कत नहीं है। जो दयायल अंग्रेजी हिन्दस के लिये दिये गये, उनको सुनने से पहले मैं उनकी अहमियत नहीं समझता था। अलबत्ता उसके बाद मुझे इस बात का अहसास हुआ

कि जो जबान एक मुद्दत तक रखी जाती है, उसके न्यूमर्ल्स रखने से हमें अपने काम में ज्यादा सहूलियत होगी, बनिस्बत देवनागरी हिन्दसों के रखने के, लेकिन ज्यों-ज्यों तरक्की होती जायेगी ओर अंग्रेज़ी की जगह पर हिन्दुस्तानी होती जाये, तो आप बेशक हिन्दुस्तानी हिन्दसे, जो भी आप तसलीम करें, उनको भी काम में ला सकते हैं, यानी नागरी हिंदसे इस्तेमाल कर सकते हैं।

जहां तक डाइरेक्टिव प्रिंसिपल का ताआल्लुक है, उसमें मैं यह समझता हूं कि उसमें जो आपने यह रखा है कि हिन्दी ऐसी तरक्की होनी चाहिये, जिसमें तमाम हिन्दुस्तान की जबानें और कल्चर समा सके। तो मैं यह कहना चाहता कि आप हिन्दी के बजाय यह हैसियत हिन्दुस्तानी को दीजिये और उसमें यह साफ कर दिया जाये कि वह जबान ऐसी हो कि जिसमें इतना फैलाव हो कि उसमें साहित्य हिन्दी, साहित्य उर्दू, उड़िया, पंजाबी, बंगला इन तमाम जबानों के फैसले की गुंजायश हो।

जहां तक रिजनल जबान का और रिजनल लैंग्वेज का ताल्लुक है, जो उस फेहरिस्त और लिस्ट दी गई है, मैं उससे सहमत हूं। मैं इसकी ताईद करता हूं। मैं मानता हूं कि बेशक इलाकों में और सूबों में उन जबानों को सरकारी जबान की हैसियत में दूसरे दर्जे में यकीनन होना चाहिए। यू.पी. में मैं ईमानदारी के साथ अपनी यह राय रखता हूं कि हिन्दुस्तान के इतने बड़े सूबे में, जो यू.पी. कहलाता है, और देहली में, इन दो सूबों में उर्दू जबान यानी सिम्पल और साफ जबान को भी सरकारी जबान होना चाहिये था, क्योंकि इस जबान का यह बहुत बड़ा गहवारा है और इसी में इसने परवरिश पाई है। अब्बल तो यू.पी. में हिन्दुस्तानी जबान ही को सरकारी जबान होना चाहिये। लेकिन अगर आज हिन्दी रखी गई है तो उर्दू को भी दूसरी जबान की हैसियत से होना चाहिये, जो सरकारी जबान की तरह तालीम में, हाई कोर्ट में और लेजिस्लेचर में कानून के अन्दर कायम रहे। वह उन जगहों में गुंजायश पा सके और इस्तेमाल की जा सके और उसको बरता जा सके।

इसलिये मैं अपनी तकरीर को खत्म करते हुए हाउस से, भवन से, अपील करूंगा कि वह इस बात पर गौर करें कि हमारी युनिट की जबान हिन्दुस्तानी होनी चाहिये, जो तमाम भाषाओं के मुकाबले में एक ऐसी सिम्पल जबान है, जो यूनियन की और मुल्क की जबान हो सकती है और जिस तरह मैंने स्वीट्जरलैंड की मिसाल दी कि वहां चार-चार जबानें इस्तेमाल होती हैं, उसी तरह अगर पन्द्रह साल तक अंग्रेज़ी जबान यहां रहेगी, तो उर्दू को भी अगर मुस्तकिल तौर पर साथ में रखा जाये और उसकी लिपि को भी शामिल रखा जाये, तो इससे कोई दिक्कत पेश नहीं आती। इतने बड़े मुल्क के लिये अगर दो लिपि हमेशा के लिये जारी रहें, तो कोई दिक्कत नहीं पेश आती। कोई पेरशानी पेश नहीं आती। और अगर सिकुलर स्टेट को हम सही मानों में सिकुलर स्टेट मानते हैं, तो मैं गुजारिश करूंगा

[मौलाना हिफजुर्रहमान]

कि सिकुलर स्टेट एक दावा है और दावा कभी सही नहीं हो सकता। जब तक उसके पीछे दलील और रीजन न हो। अगर हम सिकुलर स्टेट कहते हैं, तो हमें इस किस्म के मामलों में तंग दायरे में होकर सोचने की कोशिश नहीं करनी चाहिये और उन जबानों को जिनको हमने यहीं परवरिश किया है। और जिस उर्दू को हम आज तक यहां कहते रहे, तर्क नहीं करना चाहिए। इन मसलों पर हमें अपने दिल को पूरे तौर पर साफ करके सोचना चाहिये। तब यकीनन आप इस बात से सहमत होंगे कि मुल्क की जबान हिन्दुस्तानी और हिन्दुस्तानी ही होनी चाहिये और देवनागरी लिपि के साथ-साथ उर्दू स्क्रिप्ट और लिपि भी शामिल होनी चाहिये।

***अध्यक्ष:** यह सभा कल प्रात:काल नौ बजे तक के लिये स्थगित होती है।

इसके पश्चात् सभा मंगलवार तारीख 13 सितम्बर, 1949 के नौ बजे तक के लिये स्थगित हो गई।